भगवान्
श्री चैतन्य महाप्रभु

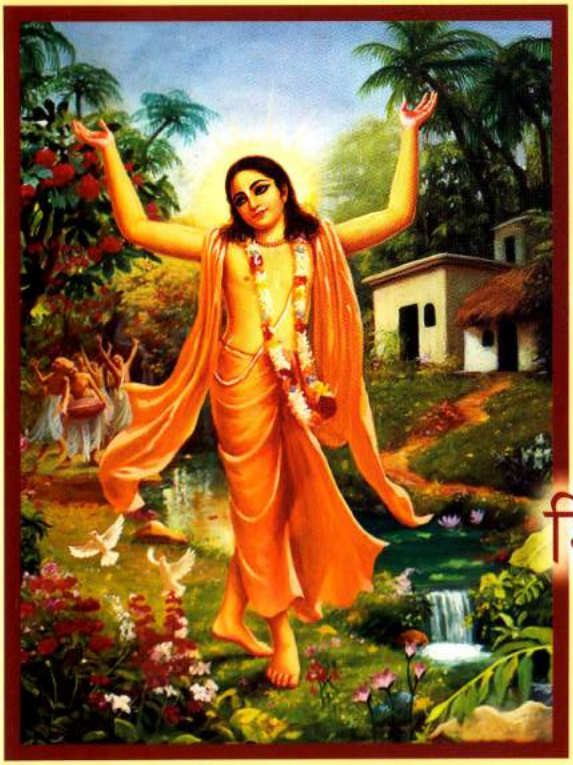

उनका जीवन तथा शिक्षामृत

कृष्णकृपामूर्ति
श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

इस ग्रंथ की विषयवस्तु में जिज्ञासु पाठकगण अपने निकटस्थ किसी भी इस्कॉन केन्द्र से अथवा निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करने के लिए आमंत्रित हैं :

The Bhaktivedanta Book Trust
Hare Krishna Land
Juhu, Mumbai - 400049, India

वेब / ई-मेल :
www.indiabbt.com
admin@indiabbt.com

Lord Caitanya : His Life and Teachings (Hindi)

1st printing : 20,000 copies
2nd printing : 25,000 copies
3rd Printing, April 2014 : 25000 copies

© २००९ भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
सर्वाधिकार सुरक्षित

ISBN : 978-93-83095-44-5

प्रकाशक की अनुमति के बिना इस पुस्तक के किसी भी अंश को पुनरुत्पादित, प्रतिलिपित नहीं किया जा सकता। किसी प्राप्य प्रणाली में संग्रहित नहीं किया जा सकता अथवा अन्य किसी भी प्रकार से चाहे इलेक्ट्रोनिक, मेकेनिकल, फोटोकॉपी, रिकार्डिंग से संचित नहीं किया जा सकता। इस शर्त का भंग करने वाले पर उचित कानूनी कार्यवाही की जाएगी।

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा
प्रकाशित एवं मुद्रित।

F7JH

विषय-सूची

भूमिका . . . . . *vii*
भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु : उनका जीवन तथा शिक्षामृत . . . १
भगवान् चैतन्य का प्राकट्य ६
भगवान् का जीवनकार्य ६
अन्न प्राशन संस्कार ९
महाप्रभु की बाल-लीलाएँ ९
उनका विद्यार्थी जीवन १२
महाप्रभु द्वारा संकीर्तन का प्रचार १४
महाप्रभु अपने प्रचारकार्य का विस्तार करते हैं १७
जगाइ तथा माधाइ का उद्धार १९
श्रीनिवास के घर पर चमत्कार २२
महाप्रभु द्वारा संन्यास स्वीकार करना २३
अद्वैत प्रभु के घर पर महाप्रभु २७
महाप्रभु की जगन्नाथ पुरी की यात्रा २७
महाप्रभु द्वारा भगवान् जगन्नाथ का दर्शन ३०
भगवत्प्रेम के भावावेश में महाप्रभु का अचेत होना ३१
सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर महाप्रभु ३२
सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा वेदों की शिक्षा ३३
वेदान्त-सूत्र की महाप्रभु द्वारा दी गई व्याख्या ३४
तथाकथित वेदानियों द्वारा वेदान्त-सूत्र का अप्रत्यक्ष अर्थघटन . . . ३६
व्यासदेव की व्याख्या प्रामाणिक है ३७

भगवान् का व्यक्तित्व सर्वोपरि तथा अन्तिम सत्ता है ३९
परम सत्य कभी भी निराकार नहीं होता ४१
भक्तिमय सेवा ही सर्वोच्च ध्येय है ४५
सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा महाप्रभु की शरण ग्रहण करना ४६
सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा महाप्रभु की स्तुति ४६
भगवान् की दक्षिण भारत की यात्रा ४८
महाप्रभु तथा रामानन्द राय के बीच वार्तालाप ४९
सर्वोच्च पूर्णता की ओर ले जाने वाले सोपान ५१
महाप्रभु का पुरी में वापस आना ५४
महाप्रभु की वृन्दावन की यात्रा ५७
भगवान् की बनारस की यात्रा ५८
महाप्रभु की प्रकाशानन्द सरस्वती से भेंट ६२
भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना वही एकमात्र मार्ग है ६३
सनातन गोस्वामी को महाप्रभु द्वारा शिक्षा ६६
महाप्रभु की मथुरा तथा वृन्दावन की यात्रा ६८
महाप्रभु प्रयाग जाते हैं ७०
महाप्रभु द्वारा रूप गोस्वामी को उपदेश ७१
महाप्रभु का शिक्षाष्टक ७४
लेखक-परिचय ८१

भूमिका

इस ग्रन्थ में प्रस्तुत भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा तथा *भगवद्गीता* में वर्णित भगवान् कृष्ण की शिक्षा में कुछ अन्तर नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा में भगवान् कृष्ण की शिक्षा का व्यावहारिक आचरण दिखाया गया है। *भगवद्गीता* के अन्त में श्रीकृष्ण का आदेश यही है कि प्रत्येक जीव को उनके शरणागत होना चाहिए। श्रीकृष्ण ऐसे शरणागत के योगक्षेम को तुरन्त वहन करने की प्रतिज्ञा करते हैं। अपने अंश क्षीरोदकशायी विष्णु के माध्यम से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण सारे ब्रह्माण्ड का पालन कर ही रहे हैं, लेकिन यह पालन प्रत्यक्ष नहीं है। किन्तु जब भगवान् कहते हैं कि वे अपने शुद्ध भक्तों के योगक्षेम का वहन करते हैं, तो वे वास्तव में स्वयं इसका भार प्रत्यक्ष संभालते हैं। शुद्ध भक्त उसे कहते हैं, जो सदा के लिए भगवान् के शरणागत हो जाय, उसी प्रकार जैसे बालक अपने माता-पिता के अथवा पशु अपने स्वामी के शरणागत रहता है। शरणगति की छः अवस्थाएँ हैं : (१) भक्ति के अनुकूल वस्तुओं का स्वीकार, (२) भक्ति के प्रतिकूल वस्तुओं का त्याग, (३) भगवान् के संरक्षण में अचल विश्वास, (४) एकमात्र भगवत् कृपा पर आश्रित रहना, (५) भगवान् की सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई स्वार्थ न रखना तथा (६) सदा विनम्र और दीनभाव रखना।

भगवान् इन छः निर्देशों के अनुसार प्रत्येक जीव को उनकी शरण में आने का आदेश करतें हैं, लेकिन विश्व के तथाकथित विद्वान कहलाने वाले मूर्ख इन आदेशों को न समझकर जन साधारण से इन्हें

अस्वीकार कर देने को कहते हैं। *भगवद्गीता* के नौवें अध्याय के अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण का स्पष्ट कथन है, "मन से सर्वदा मेरा चिन्तन करो, मुझे नमस्कार करो और मेरा पूजन करो। इस प्रकार पूर्ण रूप से मुझमें तन्मय होकर तुम मुझको ही प्राप्त करोगे।" (*भगवद्गीता* ६.३४) फिर भी, तथाकथित विद्वान असुर जनता को भगवान् श्रीकृष्ण के स्थान पर निराकार, अव्यक्त, नित्य, अजन्मा तत्त्व की ओर लगाकर पथ-भ्रष्ट करते हैं। निराकारवादी मायावादी दार्शनिक यह स्वीकार नहीं करते कि परम सत्य का अन्तिम पहलू भगवान् का व्यक्तित्व है—पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर है। यदि कोई सूर्य को यथारूप समझना चाहता है, तो सर्वप्रथम उसे सूर्य के बाहरी प्रकाश का दर्शन करना होगा, फिर सूर्य-मण्डल का और उसके बाद कहीं सूर्य-मण्डल में प्रवेश करने पर उसे सूर्य के अधिष्ठाता देवता का साक्षात्कार होगा। अल्प बुद्धि के कारण मायावादी दार्शनिक ब्रह्मज्योति को लाँघ नहीं सकते, जो केवल सूर्य-प्रकाश के समान है। उपनिषदों ने पुष्टि की है कि देदीप्यमान ब्रह्मज्योति के परे चले जाने पर ही वास्तव में भगवान् के व्यक्तित्व का साक्षात्कार हो सकता है।

अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु व्रजेन्द्रनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष आराधना की शिक्षा देते हैं। वे यह भी कहते हैं कि श्रीधाम वृन्दावन श्रीकृष्ण के समान है, क्योंकि श्रीकृष्ण के नाम, गुण, रूप, लीला, परिकर तथा साज-सामान इत्यादि तथा श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं है। यही परम सत्य की परम प्रकृति है।

भगवान् चैतन्य महाप्रभु यह भी संस्तुति करते हैं कि पूर्णता के सर्वोच्च स्तर पर आराधना की सर्वोत्कृष्ट पद्धति वह है, जिसका आचरण वृन्दावन की गोपियों के द्वारा किया गया था। ये गोपियाँ भगवान् कृष्ण से केवल विशुद्ध प्रेम करती थीं, जिसमें भौतिक या

आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने की कोई आकांक्षा नहीं थी। श्री गौरसुन्दर ने *श्रीमद्भागवत* को दिव्य ज्ञान की अमल कथा कहकर उसका अनुमोदन किया है। उन्होंने यह भी निर्देश किया है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण ते प्रति विशुद्ध प्रेम का विकास करना वही मानव जीवन का परम लक्ष्य है।

श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा और सांख्य योग के आदि प्रवक्ता श्री कपिलदेव की शिक्षा एक हैं। योग की इस प्रामाणिक पद्धति में भगवान् के दिव्य रूप के ध्यान की संस्तुति की गई है। शून्य अथवा निराकार के ध्यान का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। भगवान् विष्णु के दिव्य शरीर का ध्यान करने के लिए आसनों का अभ्यास करना आवश्यक नहीं है। ऐसे ध्यान को पूर्ण समाधि कहते हैं। ऐसी पूर्ण समाधि *भगवद्गीता* में छठे अध्याय के अन्त में श्रीकृष्ण द्वारा प्रमाणित है, जहाँ वे कहते हैं : "जो अत्यन्त श्रद्धा के साथ मुझमें अपना

अन्त:करण लगाकर अर्थात् पूर्ण समर्पण के साथ मेरी प्रेममयी दिव्य सेवा में संलग्न रहता है, तथा अन्तरंग भाव से मुझमें युक्त है, वह योगी समस्त योगियों में श्रेष्ठ है।" (गीता ६.४७)

भगवान् श्री चैतन्य ने जनता को 'अचिन्त्यभेदाभेद' नामक सांख्य योग का उपदेश किया। इस दर्शन के अनुसार परमेश्वर से उनकी सृष्टि एक ही साथ एक हैं एवं भिन्न भी है। भगवान् श्री चैतन्य ने इस दर्शन की शिक्षा हरिनाम कीर्तन के साधन द्वारा दी। उन्होंने सिखाया कि भगवान् का पवित्र नाम उनका शब्द-अवतार है और चूँकि भगवान् परम पूर्ण हैं, अत: उनके पवित्र नाम और उनके दिव्य रूप में कोई भेद नहीं है। इस प्रकार भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने से मनुष्य दिव्य ध्वनि के माध्यम द्वारा परमेश्वर का प्रत्यक्ष सान्निध्य प्राप्त कर सकता है। इस शब्द ध्वनि का अभ्यास करने वाला एक के आगे एक तीन अवस्थाओं में उन्नति करता है : अपराधी दशा, शुद्धि की अवस्था तथा दिव्य अवस्था। प्रथम, अपराधी दशा में मनुष्य में विषय-सुख की सारी इच्छाएँ बनी रहती हैं। किन्तु द्वितीय दशा में मनुष्य सारे भौतिक विकारों से मुक्त हो जाता है। जब मनुष्य दिव्य अवस्था में स्थित हो जाता है, तो वह सर्वाधिक वांछनीय पद प्राप्त करता है—भगवत्प्रेम की अवस्था। श्री गौरसुन्दर ने निर्देश किया है कि मनुष्य जीवन की पूर्णता की यही चरम अवस्था है।

योगाभ्यास मुख्य रूप से इन्द्रियों को वश में करने के लिए किया जाता है। मन सब इन्द्रियों का केन्द्रीय नियन्त्रक है, अत: सबसे पहले मन को कृष्णभावना में संलग्न करके उसका संयम करना है। मन की स्थूल क्रियाएँ बाह्य इन्द्रियों द्वारा ज्ञान-प्राप्ति के लिए अथवा मन की इच्छानुसार कर्म करने के लिए अभिव्यक्त होती हैं। मन की सूक्ष्म क्रियाएँ विचार, अनुभव और संकल्प करना हैं। अपनी चेतना के

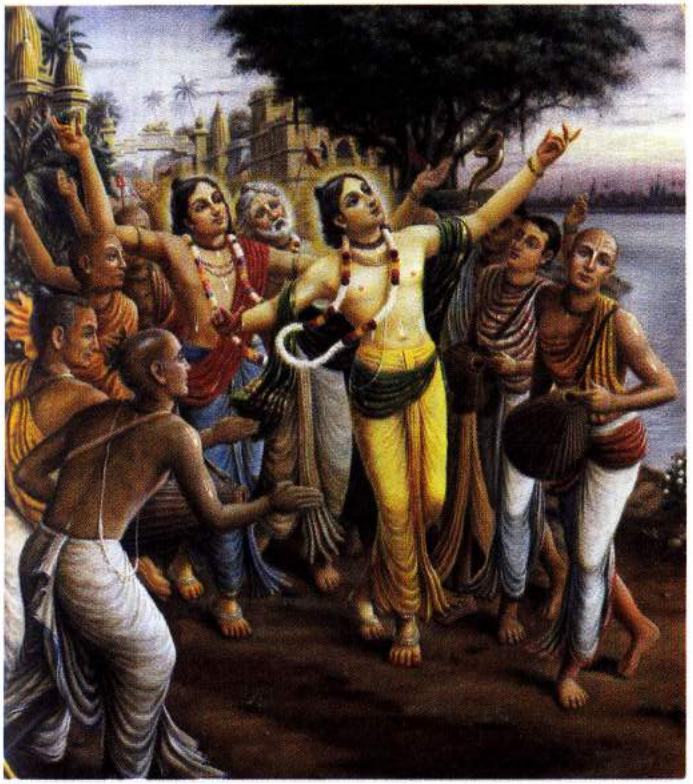

अनुरूप ही कोई जीव विकारी अथवा शुद्ध होता है। यदि उसका मन श्रीकृष्ण के नाम, गुण, रूप, लीला, परिकर, वैशिष्ट्य आदि में एकाग्र है, तो स्थूल-सूक्ष्म सभी क्रियाएँ अनुकूल हो जाती हैं। *भगवद्गीता* में वर्णित चित्तशुद्धि की पद्धति यह है कि श्रीकृष्ण की दिव्य लीला की चर्चा, उनके मन्दिर का मार्जन, विभूषित श्रीविग्रह के दर्शन, कथा-श्रवण, भगवत्-प्रसाद ग्रहण, भक्तों का संग, भगवान् को अर्पित पुष्प और तुलसी की सुगन्ध को सूँघने और श्रीकृष्ण के लिए कार्यरत

रहने आदि साधनों से उनमें अपना चित्त एकाग्र रखना चाहिए। मन और इन्द्रियों की क्रियाओं को समाप्त नहीं की जा सकतीं, किन्तु चेतना के परिवर्तन के द्वारा इन्हें शुद्ध अवश्य की जा सकती हैं। इस परिवर्तन का उल्लेख *भगवद्गीता* में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए उस बुद्धियोग के ज्ञान में है, जिसमें कर्म फल की आकांक्षा के बिना कर्म करने की संस्तुति की गई है। "हे पार्थ, इस बुद्धियोग से युक्त होकर कर्म करने पर तुम कर्मबन्धन से मुक्त हो जाओगे।" (गीता २.३९) रोगादि कुछ अवस्थाओं में मनुष्य के विषयभोग को नियमित किया जाता है; किन्तु यह वास्तविक उपचार नहीं है। मन और इन्द्रियों को वश में करने की सही पद्धति को न जानने के कारण कम बुद्धिमान लोग मन तथा इन्द्रियों को बलपूर्वक रोकने का प्रयत्न करते हैं और फिर उनसे परास्त होकर विषयभोग की तरंगो के वशीभूत हो जाते हैं।

विषयों से इन्द्रियों को रोकने के लिए योग के विधि-विधान, आसन तथा प्राणायाम का अभ्यास उनके लिए हैं, जो देहात्मबुद्धि में अत्यन्त डुबे हुए हैं। कृष्णभावना में स्थित बुद्धिमान मनुष्य अपनी इन्द्रियों को बलपूर्वक कार्य करने से नहीं रोकता; वह अपनी इन्द्रियों को कृष्ण की सेवा में लगाए रखता है। बालक को निष्क्रिय बिठाकर उसे खेलने से कोई रोक नहीं सकता। बालक को उत्तम कार्यों में लगाकर ही उसे निरर्थक क्रियाओं से रोका जा सकता है। अष्टांगयोग से इन्द्रियक्रियाओं का बलपूर्वक दमन करना निम्न स्तर के लोगों के लिए है। कृष्णभावना की उत्तम क्रियाओं में तत्पर श्रेष्ठ व्यक्ति भौतिक अस्तित्व की हीन क्रियाओं से अपने आप ही निवृत्त हो जाते हैं।

इस प्रकार भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्णभावना के विज्ञान की शिक्षा दी है। यह परम पूर्ण विज्ञान है। शुष्क मानसिक तर्कवितर्क करने वाले ज्ञानी विषयों की आसक्ति से अपने आपको संयमित करने

का प्रयत्न तो करते हैं; फिर भी प्राय: देखा जाता है कि मन बड़ा हठी है और उसे वश में करना बड़ा कठिन है। वह विषयभोग के प्रति उन्हें खींच ले जाता है। कृष्णभावनाभावित भक्त को यह भय नहीं रहता। अत: मनुष्य को मन तथा इन्द्रियों को कृष्णभावना की श्रेष्ठ क्रियाओं में संलग्न करना है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु इसके अभ्यास की शिक्षा देते हैं।

संन्यास ग्रहण करने के पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु *विश्वम्भर* नाम से प्रसिद्ध थे। 'विश्वम्भर' उसे कहते हैं, जो अखिल ब्रह्माण्ड का प्रतिपालक और सब जीवों का अग्रणी हो। मानवता को यह उत्कृष्ट शिक्षा देने के लिए यही परमेश्वर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु जीवन के प्रधान कर्तव्य के आदर्श शिक्षक हैं। वे कृष्णप्रेम के परम उदार प्रदाता, अखिल कारुण्य एवं सौभाग्य के पूर्ण भण्डार हैं। *श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता, महाभारत* तथा *उपनिषदों* से प्रमाणित है कि वे स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हैं और इस कलहप्रधान कलियुग में वे ही सबके आराध्य हैं। उनके संकीर्तन आन्दोलन में सभी सम्मिलित हो सकते हैं। इसके लिए कोई पूर्व-योग्यता की आवश्यकता नहीं है। उनकी शिक्षा का अनुसरण करने मात्र से सब मनुष्य जीवन की कृतार्थता को प्राप्त हो सकते हैं। जो सौभाग्यशाली व्यक्ति उनके दिव्य लक्षणों के प्रति आकृष्ट हो जाता है, उसके लिए जीवन के उद्देश्य में सफलता सुनिश्चित है। दूसरे शब्दों में, आध्यात्मिक जीवन के अभिलाषी मनुष्य श्री गौरसुन्दर की कृपा के बल पर माया के बन्धन से सुगमतापूर्वक मुक्त हो सकते हैं। इस पुस्तिका में प्रस्तुत श्री चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत स्वयं उनसे अभिन्न है।

भौतिक देह को अपना स्वरूप समझने के कारण बद्धजीव नाना

प्रकार के भौतिक कर्म करके इतिहास के पृष्ठों को बढ़ाता रहता है। श्री गौरसुन्दर का शिक्षामृत मानव समाज को ऐसी निरर्थक और नश्वर क्रियाओं से रोकने में सहायक सिद्ध हो सकता है। इस उपदेश के सेवन से मानव समाज भगवत्परायण दिव्य क्रिया के परमोच्च स्तर पर आरुढ़ हो सकता है। ये आध्यात्मिक क्रियाएँ वास्तव में भौतिक बन्धन से मुक्ति प्राप्त करने के बाद प्रारम्भ होती हैं। ऐसी कृष्णभावनामय जीवन्मुक्त क्रियाएँ मानव-संसिद्धि की परम लक्ष्य हैं। भौतिक प्रकृति पर अधिकार जताने के प्रयास से होने वाला मिथ्या अहंकार भ्रामक है। श्री गौरसुन्दर की शिक्षा से वह दिव्य आलोक मिलता है, जिससे आध्यात्मिक जीवन में उन्नति हो सकती है।

सब कर्मानुसार सुख-दुख भोगने को बाध्य हैं। भौतिक प्रकृति के नियमों को कोई रोक नहीं सकता। जब तक जीव सकाम कर्म में संलग्न है, तब तक जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयत्न में वह अवश्य विफल होगा। मुझे दृढ़ विश्वास है कि भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा को ग्रहण करने से मानव समाज जीवन का एक नूतन प्रकाश अनुभव करेगा, जिससे शुद्ध आत्मा की क्रिया का मार्ग प्रशस्त होगा।

ॐ तत् सत्
ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी
मार्च १४, १९६८
(भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की प्राकट्य तिथि)
श्री श्रीराधा कृष्ण मन्दिर, न्यूयॉर्क

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु

उनका जीवन तथा शिक्षामृत

ईश्वर-प्रेम के महान् दूत तथा पवित्र भगवन्नाम के सामूहिक कीर्तन के प्रवर्तक भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु बंगाल प्रान्त के नवद्वीप नगर के श्रीधाम मायापुर में फाल्गुन पूर्णिमा की संध्या को १४०७ शकाब्द (तदनुसार फरवरी १४८६ ई.) में अवतीर्ण हुए।

उनके पिता श्री जगन्नाथ मिश्र सिल्हट जिले के एक विद्वान ब्राह्मण थे, जो विद्यार्थी के रूप में नवद्वीप आये थे, क्योंकि उस समय नवद्वीप शिक्षा तथा संस्कृति का केन्द्र माना जाता था। वे नवद्वीप के महान् विद्वान श्रील नीलाम्बर चक्रवर्ती की पुत्री श्रीमती शचीदेवी से विवाह करने के पश्चात् गंगानदी के तट पर निवास करने लगे।

श्री जगन्नाथ मिश्र को उनकी पत्नी श्रीमती शचीदेवी से कई पुत्रियाँ हुईं, जिनमें से अधिकांश की मृत्यु कच्ची आयु में ही हो गई। उनके दो पुत्र बचे रहे, जिनके नाम श्री विश्वरूप तथा श्री विश्वम्भर थे, जो उनके माता-पिता के प्यार के पात्र बने रहे। विश्वम्भर उनके दसवे तथा सबसे छोटे सन्तान थे, जो आगे चलकर निमाई पण्डित के नाम से विख्यात हुए और संन्यास आश्रम ग्रहण करने के बाद भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु कहलाए।

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने ४८ वर्षों तक अपनी दिव्य लीलाएँ प्रदर्शित कीं और उसके बाद १४५५ शकाब्द में वे पुरी में अन्तर्धान हो गये।

वे अपने प्रथम चौबीस वर्षों तक विद्यार्थी तथा गृहस्थ के रूप में नवद्वीप में रहे। उनकी पहली पत्नी श्रीमती लक्ष्मीप्रिया थीं, जिनकी मृत्यु अल्पायु में हो गई, जब महाप्रभु अपने नगर से बाहर गये हुए थे। जब वे पूर्वी बंगाल से लौटकर आये, तो उनकी माता ने उनसे दूसरा ब्याह करने का आग्रह किया, जिसे उन्होंने मान लिया। उनकी दूसरी पत्नी का नाम विष्णुप्रिया देवी था, जिन्हें आजीवन अपने स्वामी का वियोग सहना पड़ा, क्योंकि उन्होंने चौबीस वर्ष की आयु में संन्यास ग्रहण कर लिया, जब श्रीमती विष्णुप्रिया मुश्किल से सोलह वर्ष की थीं।

संन्यास ग्रहण करने के बाद महाप्रभु ने अपनी माता श्रीमती शचीदेवी के आग्रह पर जगन्नाथपुरी को अपनी कर्मभूमि बना लिया। भगवान् वहाँ पर चौबीस वर्षों तक रहे। इनमें से उन्होंने छह वर्ष भारत (विशेष रूप से संपूर्ण दक्षिण भारत) में *श्रीमद्भागवत* का उपदेश देते हुए निरन्तर भ्रमण करने में बिताये।

भगवान् चैतन्य ने न केवल *श्रीमद्भागवत* का उपदेश दिया, अपितु *भगवद्गीता* का भी अत्यन्त व्यावहारिक ढंग से प्रचार किया। *भगवद्गीता* में भगवान् श्रीकृष्ण को परम भगवान् के रूप में अंकित किये गये हैं। दिव्य ज्ञान के इस महान् ग्रन्थ में उनका अन्तिम उपदेश यह है कि मनुष्य को चाहिए कि वह समस्त धार्मिक कृत्यों की सारी विधियों को त्यागकर उन्हें (भगवान् श्रीकृष्ण को) ही *एकमात्र* पूजनीय स्वामी के रूप में स्वीकार करे। फिर उन्होंने अपने सभी भक्तों को आश्वस्त किया कि वे समस्त पापों से उनकी रक्षा करेंगे, अत: उन्हें

किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

दुर्भाग्यवश भगवान् श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष आदेश तथा *भगवद्गीता* के उपदेशों के बावजूद अल्पज्ञानी लोग भ्रमवश उन्हें केवल एक महान् ऐतिहासिक व्यक्ति मान लेते हैं, अतएव वे उन्हें आदि भगवान् के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते। ऐसे अल्पज्ञ लोग अनेक अभक्तों द्वारा गुमराह किये जाते हैं। इस प्रकार बड़े-बड़े विद्वानों तक ने *भगवद्गीता* के उपदेशों की गलत व्याख्याएँ कीं। भगवान् श्रीकृष्ण के अप्रकट होने के बाद अनेक उद्भट विद्वानों ने *भगवद्गीता* पर सैकड़ों टीकाएँ की हैं और इनमें से प्राय: प्रत्येक टीका खुद के कुछ स्वार्थ से प्रेरित है।

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं, किन्तु इस बार वे जन-सामान्य को तथा साथ ही धर्मविदों एवं दार्शनिकों

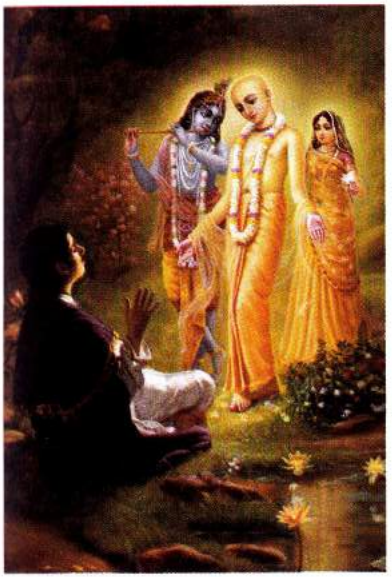

को, समस्त कारणों के कारण आदि भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य स्थिति के विषय में उपदेश देने के लिए एक महान् भगवद्भक्त के रूप में प्रकट हुए। उनके उपदेश का सार यह है कि व्रजभूमि (वृन्दावन) में व्रज के राजा (नन्द महाराज) के पुत्र के रूप में प्रकट होने वाले भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् परमेश्वर हैं और सबों के द्वारा पूज्य हैं।

वृन्दावन धाम भगवान् से अभिन्न है, क्योंकि भगवान् के नाम, यश, रूप तथा उनकी आविर्भाव-स्थली परम ज्ञान के रूप में भगवान् से अभिन्न हैं। अतएव वृन्दावन धाम भगवान् के ही समान पूज्य है। भगवान् की दिव्य पूजा का सर्वोच्च रूप व्रजभूमि की गोपिकाओं द्वारा प्रदर्शित शुद्ध भगवत्-प्रेम के रूप में प्रकट हुआ। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु इस प्रक्रिया की संस्तुति पूजा की सर्वोत्तम विधि के रूप में करते हैं। वे भगवान् को समझने के लिए *श्रीमद्भागवत पुराण* को निष्कलंक साहित्य के रूप में स्वीकार करते हैं और वे उपदेश देते हैं कि सारे मनुष्यों के जीवन का चरम लक्ष्य भगवत्प्रेम के स्तर को प्राप्त करना है।

भगवान् चैतन्य के अनेक भक्तों ने, जैसे कि श्रील वृन्दावन दास ठाकुर, श्री लोचन दास ठाकुर, श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्री कविकर्णपूर, श्री प्रबोधानन्द सरस्वती, श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्री जीव गोस्वामी, श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी, श्री रघुनाथ दास गोस्वामी ने तथा विगत दो सौ वर्षों में श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती, श्री बलदेव विद्याभूषण, श्री श्यामानन्द गोस्वामी, श्री नरोत्तमदास ठाकुर, श्री भक्तिविनोद ठाकुर तथा अन्त में श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर (हमारे गुरु महाराज) तथा अन्य अनेक महान् विख्यात विद्वानों तथा भक्तों ने भगवान् के जीवन तथा उनकी शिक्षाओं के विषय में बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे हैं। ऐसे ग्रन्थ *वेदों, पुराणों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत* तथा मान्य आचार्यों द्वारा स्वीकृत अन्य इतिहासों एवं प्रामाणिक साहित्य जैसे शास्त्रों पर आधारित हैं। उनकी रचना अद्वितीय है और उनका प्रस्तुतीकरण अतुलनीय है और वे सभी दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण हैं। दुर्भाग्यवश विश्व के लोग अब भी उनसे अनजान हैं, किन्तु जब यह सारा साहित्य, जो

मुख्य रूप से संस्कृत तथा बँगला में है, विश्व के सामने प्रकाश में आयेगा और जब विचारशील लोगों के समक्ष प्रस्तुत होगा, तब यह रुग्ण संसार भारत के गौरव से तथा प्रेम-सन्देश से आप्लावित हो उठेगा, जो आचार्यों की गुरु-शिष्य परम्परा से स्वीकृत न होने वाली विविध भ्रामक विधियों द्वारा शान्ति तथा सम्पन्नता की खोज के व्यर्थ प्रयास में लगा हुआ है।

यदि भगवान् चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा उपदेशों के इस संक्षिप्त वर्णन के पाठक श्रील वृन्दावनदास ठाकुर कृत *श्रीचैतन्य भागवत* तथा श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत *श्रीचैतन्य चरितामृत* नामक पुस्तकें पढ़ेंगे, तो उन्हें काफी लाभ पहुँचेगा। जहाँ तक भगवान् चैतन्य के प्रारम्भिक जीवनकाल का सम्बन्ध है, उसका अत्यन्त मनोहारी वर्णन *श्रीचैतन्य भागवत* के रचयिता ने किया है और जहाँ तक उनकी शिक्षाओं का सम्बन्ध है, वे *चैतन्य चरितामृत* में भलीभाँति व्याख्यायित हैं। अब वे अंग्रेजी भाषी जनता के लिए हमारे द्वारा लिखित *टीचिंग्स ऑफ लॉर्ड चैतन्य* (*भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत*) के रूप में उपलब्ध है।

महाप्रभु के प्रारम्भिक जीवन का अंकन उनके प्रमुख भक्त तथा समकालीन श्रील मुरारी गुप्त द्वारा किया गया, जो उस समय एक चिकित्साशास्त्री (वैद्य) थे। महाप्रभु का बाद का जीवन उनके निजी सचिव श्री दामोदर गोस्वामी या श्रील स्वरूप दामोदार द्वारा अंकित किया गया, जो पुरी में भगवान् के निरन्तर संगी बने रहे। इन दोनों भक्तों ने महाप्रभु के प्राय: समस्त कार्यकलापों का लेखा-जोखा रखा और बाद में भगवान् चैतन्य सम्बन्धी उपर्युक्त जितने भी ग्रन्थ लिखे गये, वे सब श्रील दामोदर गोस्वामी तथा मुरारी गुप्त के *कडचों* (डायरियों) के आधार पर तैयार किये गये।

भगवान् चैतन्य का प्राकट्य

इस प्रकार भगवान् १४०७ शकाब्द में फाल्गुन पूर्णिमा की संध्या वेला के समय अवतीर्ण हुए और भगवत्-इच्छा से उस सन्ध्या को चन्द्रग्रहण था। ग्रहण के समय में हिन्दू जनता द्वारा गंगा नदी में या किसी अन्य पवित्र नदी में स्नान करने और शुद्धि के लिए वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करने की प्रथा है। अतएव जब भगवान् चैतन्य का जन्म चन्द्रगहण के समय हुआ, उस समय सारा भारतवर्ष—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे॥ की दिव्य ध्वनि से गूँज रहा था। भगवान् के ये सोलह नाम अनेक *पुराणों* तथा *उपनिषदों* में उल्लिखित हैं और इस युग में *तारक ब्रह्म* नाम से वर्णित हैं। शास्त्रों का अभिमत है कि यदि भगवान् के इन पवित्र नामों का निरपराध भाव से जप-कीर्तन किया जाय, तो इससे पतित जीवों का भव-बन्धन से उद्धार हो सकता है। भारत में तथा अन्यत्र भगवान् के असंख्य नाम हैं और वे सभी समान रूप से उत्तम हैं, क्योंकि वे सभी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सूचक हैं। चूँकि ये सोलह नाम इस युग के लिए विशेष रूप से संस्तुत हैं, अत: लोगों को चाहिए कि वे इनका लाभ उठाएँ और उन महान् आचार्यों के पथ का अनुसरण करें, जिन्होंने प्रामाणिक शास्त्रों के नियमों का पालन करते हुए सफलता प्राप्त की है।

भगवान् का जीवनकार्य

महाप्रभु का आविर्भाव तथा चन्द्रग्रहण का एकसाथ घटित होना भगवान् के विशिष्ट उद्देश्य का सूचक है। यह उद्देश्य था इस कलि

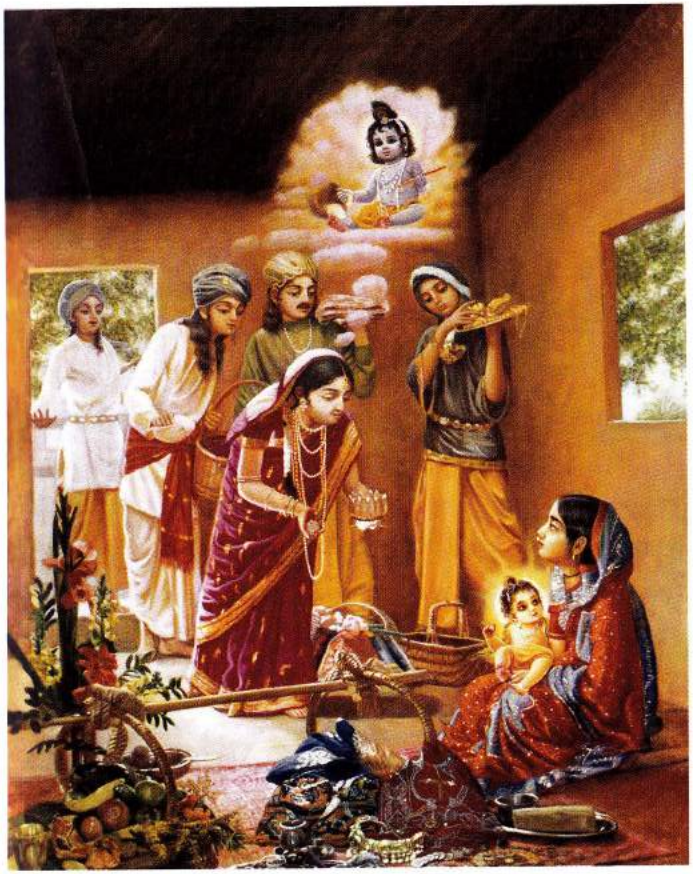

(कलह के) युग में भगवन्नाम कीर्तन की महत्ता का प्रचार करना। इस वर्तमान युग में छोटी-छोटी बातों पर भी कलह होने लगता है, अतएव शास्त्रों ने इस युग के लिए अनुभूति के सर्व-सामान्य मंच की संस्तुति की है, जो है भगवान् के पवित्र नामों का कीर्तन करना। लोग अपनी-अपनी भाषा में तथा मधुर गीतों के द्वारा भगवान् की महिमा का गायन

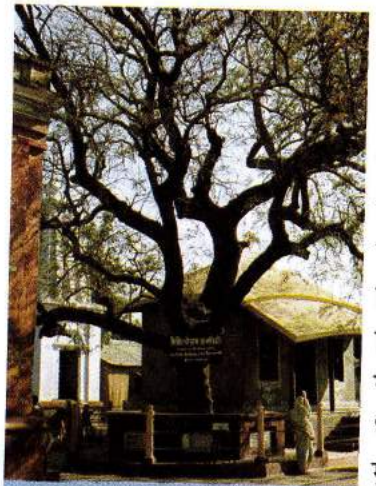
भगवान् चैतन्य का जन्म-स्थल

करने के लिए सभाएँ कर सकते हैं और यदि ऐसी सभाएँ निरपराध भाव से की जाँय, तो यह निश्चित है कि भाग लेने वाले सभी को किसी कठिन विधि का पालन किये बिना ही क्रमशः आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त होगी। ऐसी सभाओं में सब लोग—विद्वान तथा मूर्ख, धनी तथा निर्धन, हिन्दू तथा मुसलमान, अँग्रेज तथा भारतीय एवं चांडाल तथा ब्राह्मण सभी दिव्य ध्वनि को सुन सकते हैं और इस तरह वे अपने हृदय के दर्पणों से भौतिक संसर्ग की धूल को साफ कर सकते हैं। भगवान् के उद्देश्य की पूर्ति के लिए विश्व के समस्त लोगों को चाहिए कि वे पवित्र भगवन्नाम को मनुष्य जाति के लिए सार्वभौमिक धर्म के सर्वसामान्य मंच के रूप में स्वीकार करें। दूसरे शब्दों में, भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतरण के साथ-साथ पवित्र नाम का भी अवतरण हुआ।

अभी महाप्रभु अपनी माता की गोद में ही थे कि जब-जब उनके पास एकत्र महिलाएँ पवित्र नाम का कीर्तन करतीं और तालियाँ बजातीं, तो वे अपना रोना बन्द कर देते। इस विशिष्ट घटना को सारे पड़ोसी अत्यन्त आश्चर्य तथा आदर के साथ देखते। कभी-कभी छोटी लड़कियाँ भगवान् को रुलाने और फिर पवित्र नाम के जप द्वारा उन्हें चुप कराने में आनन्द लेतीं। इस तरह महाप्रभु अपने बाल्यकाल से ही

पवित्र नाम की महत्ता का उपदेश देने लगे थे। भगवान् श्री चैतन्य बाल्यकाल में 'निमाई' कहलाते थे। यह नाम उनकी प्यारी माता द्वारा रखा गया था, क्योंकि महाप्रभु का जन्म उनके पिता के घर के आँगन में उगे एक नीम के वृक्ष के नीचे हुआ था।

अन्न प्राशन संस्कार

जब महाप्रभु को ६ मास की आयु में *अन्नप्राशन संस्कार* के समय अन्न खिलाया गया, तब उन्होंने अपनी भावी लीलाओं का संकेत कर दिया। इस अवसर पर शिशु की भावी प्रवृत्तियों का आभास पाने के उद्देश्य से बच्चे को सिक्के तथा पुस्तकें दी जाती हैं। महाप्रभु की एक ओर सिक्के रखे गये ओर दूसरी ओर *श्रीमद्भागवत* रखा गया। महाप्रभु ने सिक्कों को न ग्रहण करके *भागवत* को ग्रहण किया।

महाप्रभु की बाल-लीलाएँ

जब महाप्रभु बाल रूप में आँगन में घुटनों के बल चलना सीख ही रहे थे कि एक दिन उनके समक्ष एक नाग प्रकट हुआ और महाप्रभु उससे खेलने लगे। घर के सारे सदस्य भय तथा आश्चर्य से स्तब्ध हो गये, किन्तु थोड़ी देर के बाद नाग चला गया और माता ने बालक को उठा

लिया। एक बार एक चोर उनके आभूषण छीनने के उद्देश्य से उन्हें चुरा ले गया, किन्तु वे डरे नहीं और उस मोहग्रस्त चोर के कन्धे पर चढ़े-चढ़े यात्रा का आनन्द लेते रहे। यह चोर बच्चे को लूटने के लिए एकान्त स्थान की तलाश में था, किन्तु ऐसा हुआ कि वह चोर इधर-उधर घूमकर फिर से जगन्नाथ मिश्र के घर पहुँच गया और पकड़े जाने के भय से बालक को तत्काल वहीं पर छोड़ गया। निस्सन्देह, चिन्तित माता-पिता तथा परिजन खोये बालक को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

एक बार एक तीर्थयात्री ब्राह्मण जगन्नाथ मिश्र के घर पधारा और जब वह भगवान् को भोग अर्पित कर रहा था, तो महाप्रभु उसके समक्ष प्रकट हुए और उन्होंने वह भोग ग्रहण कर लिया। उस ब्राह्मण को सारा भोजन फेंककर फिर से भोग तैयार करना पड़ा, क्योंकि उसे बच्चे ने छू जो लिया था। अगली बार भी ऐसा ही हुआ और जब तीसरी बार भी ऐसा ही हुआ, तो बच्चे को पकड़कर सुला दिया गया। अर्धरात्रि के समय जब घर के सभी लोग सो गये, तो उस ब्राह्मण ने अपने द्वारा तैयार किये गये उस विशिष्ट भोग को श्रीविग्रह को अर्पित किया, लेकिन उस बालक भगवान् ने पूर्ववत् प्रकट होकर उस भोग को जूठा कर दिया। तब वह ब्राह्मण रोने लगा, किन्तु चूँकि घर के सारे लोग सोये थे, अत: उसका रोना किसी ने सुना नहीं। उस समय

बालरूप भगवान् उस भाग्यवान ब्राह्मण के समक्ष प्रकट हुए और स्वयं कृष्ण के रूप में अपना दर्शन दिया। ब्राह्मण को इस घटना को प्रकट न करने के लिए कहकर बालक अपनी माता की गोद में लौट आया।

उनके बाल्यकाल की ऐसी अनेक घटनाएँ हैं। कभी-कभी एक नटखट बालक की भाँति वे उन रूढ़िवादी ब्राह्मणों को तंग करते, जो गंगा-स्नान करने आते। जब ब्राह्मणों ने उनके पिता से शिकायत की कि वे पाठशाला जाने के बदले उन पर पानी फेंकते हैं, तो वे सहसा अपने पिता के समक्ष स्कूल की वेशभूषा में पुस्तकें लिए प्रकट हो गये, मानो वे सीधे स्कूल से आ रहे हों। वे स्नान-घाट में पड़ोस की उन लड़कियों से परिहास करते रहते, जो अच्छा पति पाने के उद्देश्य से शिव की पूजा करने में व्यस्त रहतीं। हिन्दू परिवारों में कुमारियों में यह सामान्य प्रथा है। जब वे ऐसी पूजा में व्यस्त रहतीं, तो नटखट

महाप्रभु उनके समक्ष प्रकट होकर कहते, "मेरी प्रिय बहनों, तुम शिवजी की भेंट के लिए जो कुछ लाई हो, वह मुझे दे दो। शिवजी मेरे भक्त हैं और पार्वती मेरी सेविका है। यदि तुम मेरी पूजा करोगी, तो शिवजी तथा अन्य सारे देवता तुम पर और भी प्रसन्न होंगे।" उनमें से कुछ कुमारिकाएँ नटखट महाप्रभु की आज्ञा

नहीं मानती थीं, तो वे उन्हें शाप देते और कहते कि तुम मेरी अवज्ञा के कारण ऐसे वृद्ध व्यक्ति से ब्याही जाओगी, जिसकी पहली पत्नी से सात बच्चे रहेंगे। भयवश और कभी-कभी प्रेमवश ये कुमारिकाएँ उन्हें विविध सामग्रियाँ अर्पित करतीं और तब महाप्रभु उन्हें आशीष देते और आश्वस्त करते कि उन्हें सुन्दर युवा पति प्राप्त होंगे और उन्हें दर्जनों बच्चे होंगे। ऐसे आशीषों से कुमारियाँ प्रफुल्लित हो उठतीं, लेकिन प्राय: वे अपनी माताओं से ऐसी घटनाओं की शिकायत भी करतीं।

उनका विद्यार्थी जीवन

महाप्रभु ने इस प्रकार अपना बाल्यकाल बिताया। जब वे केवल सोलह वर्ष के थे, तब उन्होंने अपनी निजी *चतुष्पाठी* (विद्वान ब्राह्मण द्वारा चलाई जाने वाली ग्रामीण पाठशाला) चालू की। वे इस पाठशाला में व्याकरण पढ़ाते समय भी केवल कृष्ण की व्याख्या करते। बाद में महाप्रभु को प्रसन्न करने के लिए श्रील जीव गोस्वामी ने एक संस्कृत व्याकरण तैयार किया, जिसमें व्याकरण के सारे नियमों को भगवान् के पवित्र नामों के उदाहरणों द्वारा समझाया गया था। यह व्याकरण आज भी प्रचलित है। यह *हरिनामामृत व्याकरण* के नाम से प्रसिद्ध है और बंगाल की पाठशालाओं के पाठ्यक्रम में स्वीकृत है।

इसी समय केशव काश्मीरी नामक एक महान् काश्मीरी पण्डित शास्त्रों पर शास्त्रार्थ करने के लिए नवद्वीप आया। यह पण्डित दिग्वीजयी था और वह भारत के समस्त विद्याकेन्द्रों का भ्रमण कर चुका था। अन्त में वह नवद्वीप के पण्डितों से शास्त्रार्थ करने आया था। नवद्वीप के पण्डितों ने काश्मीरी पण्डित के साथ प्रतियोगिता में

निमाई पण्डित (भगवान् चैतन्य) को प्रस्तुत करने का निश्चय यह सोचकर किया कि यदि निमाई पण्डित हारेगा, तो उन्हें शास्त्रार्थ करने का एक और अवसर मिलेगा, क्योंकि निमाई पण्डित तो अभी एक बालक ही थे और यदि काश्मीरी पण्डित हार गया, तो उनकी गरिमा में और वृद्धि होगी, क्योंकि तब लोग यही कहेंगे कि नवद्वीप के सिर्फ एक बालक ने ऐसे विजेता पण्डित को हरा दिया, जो भारत भर में विख्यात था। संयोगवश ऐसा हुआ कि गंगा के तट पर टहलते हुए निमाई पण्डित की भेंट केशव काश्मीरी से हो गई। महाप्रभु ने उससे गंगा की प्रशंसा में संस्कृत का एक श्लोक रचने के लिए कहा। उस पण्डित ने अल्प समय में ही एक सौ श्लोक बना लिये और उन्हें आँधी की गति से सुनाकर अपने विस्तीर्ण पांडित्य का प्रदर्शन किया। निमाई पण्डित ने सारे श्लोक बिना किसी त्रुटि के तत्काल कण्ठस्थ कर लिये। उन्होंने चौंसठवे श्लोक को उद्धृत करते हुए उसकी पिंगल (छंदशास्त्र) एवं साहित्य सम्बन्धी त्रुटियों की ओर संकेत किया। उन्होंने विशेष रूप से पण्डित द्वारा *भवानीभर्तु:* शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की। उन्होंने इंगित किया कि यह शब्द अयोग्य है। *भवानी* का अर्थ है शिव की पत्नी, तो फिर उनका *भर्ता* या पति और कौन हो सकता है? उन्होंने और भी कई त्रुटियाँ दिखलाई, जिससे काश्मीरी पण्डित आश्चर्य से स्तब्ध रह गया। वह विस्मित था कि एक व्याकरण का विद्यार्थी इतने उदभट् विद्वान में साहित्यिक त्रुटियाँ निकाल रहा है। यद्यपि यह घटना किसी सार्वजनिक सभा के होने के पूर्व घटित हो चुकी थी, किन्तु यह खबर दावाग्नि की भाँति सारे नवद्वीप में फैल गई। किन्तु अन्त में विद्या की देवी सरस्वती ने केशव काश्मीरी को स्वप्न में आदेश दिया कि वह भगवान् चैतन्य की शरण स्वीकार कर ले और इस तरह वह पण्डित भगवान् का अनुयायी बन गया।

महाप्रभु द्वारा संकीर्तन का प्रचार

फिर महाप्रभु का विवाह अत्यन्त धूमधाम से सम्पन्न हुआ और उस समय वे नवद्वीप में भगवान् के पवित्र नाम के सामूहिक कीर्तन का प्रचार करने लगे। वहाँ के कुछ ब्राह्मण उनकी इस लोकप्रियता से ईर्ष्या करने लगे और उन्होंने उनके मार्ग में अनेक अवरोध उत्पन्न किये। वे इतने ईर्ष्यालु हो उठे कि अन्त में वे इस मामले को नवद्वीप

के मुसलमान काजी के समक्ष ले गये। उस समय बंगाल पर पठानों का शासन था और उस प्रान्त का गवर्नर (राज्यपाल) नवाब हुसैन शाह था। मुसलमान काजी ने ब्राह्मणों की इस शिकायत को गम्भीरता से लिया और शुरु में उसने निमाई पण्डित के अनुयायियों द्वारा हरिनाम का जोर-जोर से कीर्तन करने की मनाही कर दी। लेकिन भगवान् चैतन्य ने अपने अनुयायियों से कहा कि काजी के इस आदेश का उल्लंघन करें और वे पूर्ववत् संकीर्तन मण्डली चलाते रहे। तब जिलाधीश ने कुछ सिपाही भेजे, जिन्होंने संकीर्तन में बाधा डाली और

कुछ के मृदंग तोड़ डाले। जब निमाई पण्डित ने यह घटना सुनी, तो उन्होंने सविनय अवज्ञा के लिए एक दल तैयार किया। भारत में उचित कार्य के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन करने वाले वे अग्रणी व्यक्ति हैं। उन्होंने एक लाख व्यक्तियों का जुलूस निकाला, जो हजारों मृदंग तथा करताल लिए थे। यह जुलूस काजी द्वारा दिये गये आदेश के विरोध में नवद्वीप की सड़कों से होकर गुजरा। अन्त में जब यह जुलूस काजी के घर पहुँचा, तो जनसमूह से डरकर वह सीढ़ियों से

ऊपर चढ़ गया। काजी के घर पर एकत्रित जनसमूह ने अत्यधिक उग्र रूप धारण कर लिया था, लेकिन महाप्रभु ने शान्ति बनाये रखने के लिए कहा। इस समय काजी नीचे आया और भगवान् को अपना भाँजा कह करके शान्त करना चाहा। उसने कहा कि नीलाम्बर चक्रवर्ती को वे चाचा कहते थे और इस तरह निमाई पण्डित की माता श्रीमती शचीदेवी उसकी चचेरी बहन लगती थीं। उसने पूछा कि क्या उसकी बहन का लड़का अपने मामा पर क्रुद्ध हो सकता है? इस पर महाप्रभु ने उत्तर दिया कि यदि काजी उनका मामा है, तो उसे चाहिए

कि वह अपने द्वार पर अपने भाँजे का स्वागत करे। इस प्रकार यह विवाद समाप्त हो गया और दोनों विद्वानों में कुरान तथा हिन्दू शास्त्रों के विषय में लम्बी चर्चा चलने लगी। महाप्रभु ने गोवध का प्रश्न उठाया और काजी ने कुरान का सन्दर्भ देते हुए सही-सही उत्तर दिया। बदले में काजी ने भी महाप्रभु से वेदों में गोमेध यज्ञ के विषय में प्रश्न पूछा, जिसका उत्तर महाप्रभु ने यह दिया कि वेदों में उल्लिखित ऐसा यज्ञ वास्तव में गो-वध नहीं है। ऐसे यज्ञ में किसी बूढ़े बैल या गाय का वध इसीलिए किया जाता था कि वैदिक मन्त्रों की शक्ति से उन्हें नया युवा जीवन प्राप्त हो सके। लेकिन कलियुग में ऐसा गोमेघ यज्ञ वर्जित है, क्योंकि ऐसा यज्ञ सम्पन्न करानेवाले योग्य ब्राह्मण उपलब्ध नहीं हैं। वस्तुत: कलियुग में ऐसे सभी यज्ञ वर्जित हैं, क्योंकि ये यज्ञ मूर्ख पुरुषों के व्यर्थ प्रयास मात्र हैं। कलियुग में समस्त व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए एकमात्र संकीर्तन यज्ञ की संस्तुति की गई है। इस प्रकार बातें करते हुए महाप्रभु ने काजी को समझाया और वह महाप्रभु का अनुयायी बन गया। तत्पश्चात् काजी ने घोषणा की कि महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित संकीर्तन आन्दोलन में कोई बाधक न बने और अपनी बाद की पीढ़ी के लिए भी वह यह आदेश अपनी वसीयत में छोड़ता गया। आज भी इस काजी की कब्र नवद्वीप क्षेत्र में स्थित है और हिन्दू यात्री वहाँ जाकर प्रणाम करते हैं। काजी के वंशज वहाँ के निवासी हैं और उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम दंगों के समय भी संकीर्तन का कोई विरोध नहीं किया।

यह घटना स्पष्ट बताती है कि महाप्रभु तथाकथित भीरु वैष्णव न थे। वैष्णव भगवान् का एक निर्भीक भक्त होता है और सही उद्देश्य के लिए वह कोई भी उचित कदम उठा सकता है। अर्जुन भी भगवान् कृष्ण का वैष्णव भक्त था और उसने भगवान् को सन्तुष्ट करने के लिए

वीरतापूर्वक युद्ध किया। इसी प्रकार वज्रांगजी या हनुमान भी भगवान् राम के भक्त थे और उन्होंने रावण के अभक्त दल को अच्छा पाठ पढ़ाया। वैष्णव-धर्म का सिद्धान्त है सभी प्रकार से भगवान् को प्रसन्न करना। वैष्णव स्वभाव से अहिंसक, शान्त जीव होता है और उसमें ईश्वर के समस्त सद्गुण रहते हैं, किन्तु जब कोई अभक्त भगवान् या उनके भक्तों की निन्दा करता है, तो वैष्णव कभी भी ऐसी धृष्टता को सहन नहीं करता।

महाप्रभु अपने प्रचारकार्य का विस्तार करते हैं

इस घटना के बाद महाप्रभु अपने *भागवत-धर्म* या *सङ्कीर्तन* आन्दोलन का और तेजी से उपदेश तथा प्रचार करने लगे और जो भी *युगधर्म* के इस प्रचार के विरुद्ध खड़ा हुआ, उसे विविध प्रकार की प्रताड़नाओं द्वारा दण्डित किया गया। चापल तथा गोपाल नामक दो ब्राह्मण महाशय जो महाप्रभु के मामा भी लगते थे, वे दंड के रूप में कोढ़ से ग्रस्त हो गये, किन्तु बाद में जब उन्होंने

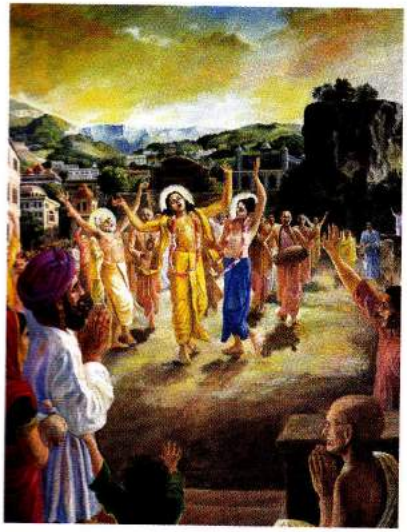

पश्चात्ताप किया, तो भगवान् ने उन्हें अपनी शरण में ले लिया। अपने उपदेश कार्य के दौरान वे नित्य ही द्वार-द्वार जाकर *श्रीमद्भागवत* का उपदेश करने के लिए अपने अनुयायियों को भेजते थे, जिनमें उनकी मण्डली के दो प्रमुख व्यक्ति श्रील नित्यानन्द प्रभु तथा ठाकुर हरिदास भी सम्मिलित होते थे। सारा नवद्वीप उनके संकीर्तन आन्दोलन से अनुप्राणित था और उनका मुख्य कार्यालय उनके दो प्रमुख गृहस्थ भक्तों, श्रीवास ठाकुर तथा श्री अद्वैत प्रभु के घर में स्थित था। ये दोनों ब्राह्मण जाति के विद्वान मुखिया थे, जो भगवान् श्री चैतन्य के आन्दोलन के प्रबल समर्थक थे। श्री अद्वैत प्रभु भगवान् के अवतरण के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार थे। जब अद्वैत प्रभु ने देखा कि सारा मानव-समाज भौतिक कार्यकलापों से भरा है और भक्ति से विहीन है, जो मानवजाति को भौतिक अस्तित्व के तीनों प्रकार के संतापों से बचाने का एकमात्र साधन है, तब उन्होंने काल का शिकार बने हुए मानव समाज पर अपनी अहैतुकी दयावश भगवान् से अवतरित होने की उत्कट प्रार्थना की और वे गंगाजल एवं पवित्र तुलसी-दल से भगवान् की पूजा निरन्तर करते रहे। जहाँ तक संकीर्तन आन्दोलन के उपदेश कार्य का सम्बन्ध था, महाप्रभु का आदेश था कि प्रत्येक व्यक्ति नित्य अपना हिस्सा पूरा करे।

जगाइ तथा माधाइ का उद्धार

एक बार नित्यानन्द प्रभु तथा श्रील हरिदास ठाकुर मुख्य सड़क पर जा रहे थे, तो उन्होंने सामने ही एकत्र शोर मचाती भीड़ देखी। राहगीरों से पूछने पर उन्हें पता चला कि जगाइ तथा माधाइ नामक दो भाई शराब पीकर उपद्रव मचा रहे हैं। उन्होंने यह भी सुना कि वे दोनों भाई सम्मानित ब्राह्मण परिवार में जन्मे हैं, किन्तु कुसंगति के कारण वे अत्यन्त पतित बन गये हैं। वे न केवल शराबी थे, अपितु मांसभक्षक, व्यभिचारी, डाकू तथा सभी प्रकार के पाप करने वाले थे। श्रील नित्यानन्द प्रभु ने उनकी सारी कहानी सुनी और यह निश्चय किया कि सबसे पहले इन दोनों पतितात्माओं का उद्धार होना चाहिए। यदि इन दोनों को पापमय जीवन से उबार लिया जाय, तो भगवान् चैतन्य का अच्छा नाम और भी महिमामंडित हो जाएगा। इस प्रकार सोचते हुए नित्यानन्द प्रभु तथा हरिदास दोनों ही भीड़ के बीच से घुसते हुए वहाँ गये और दोनों भाइयों से भगवान् हरि का नाम जपने के लिए कहा। इस प्रार्थना पर नशे की हालत में वे दोनों भाई आग-बबूला हो उठे और नित्यानन्द प्रभु को भद्दी गालियाँ दीं। दोनों भाईयों ने दूर तक उनका पीछा किया। जब शाम को महाप्रभु के समक्ष उपदेश कार्य की सूचना प्रस्तुत की गई, तो महाप्रभु को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि नित्यानन्द तथा हरिदास ने ऐसे दो मूर्खों का उद्धार करने का प्रयत्न किया है।

दूसरे दिन नित्यानन्द प्रभु इन दोनों भाइयों को मिलने गये और जब वे उनके पास पहुँचे, तो उनमें से एक ने उनको मिट्टी के बर्तन का एक टुकड़ा मारा। वह उनके मस्तक पर लगा और उससे तुरन्त खून बहने लगा। लेकिन नित्यानन्द प्रभु इतने दयालु थे कि इस जघन्य

कृत्य का विरोध करने के बदले उन्होंने कहा, "चलो, कोई बात नहीं कि तुमने मुझ पर पत्थर फेंका। इतने पर भी मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम भगवान् हरि के पावन नाम का उच्चारण करो।"

उन भाईयों में से एक से जगाइ, नित्यानन्द प्रभु के इस आचरण को देखकर विस्मित हुआ और वह तुरन्त उनके पैरों पर गिरकर अपने पापी भाई को क्षमा करने की विनती करने लगा। जब माधाइ ने पुनः नित्यानन्द प्रभु पर प्रहार करना चाहा, तो जगाइ ने उसे रोका और उनके चरणों पर गिरने के लिए उससे विनति की। इस बीच नित्यानन्द प्रभु को चोट लगने की जानकारी महाप्रभु तक पहुँच गई और वे तुरन्त ही अत्यन्त कुपित होकर उस स्थान पर जा पहुँचे। भगवान् ने तुरन्त ही उन पापियों का वध करने के लिए अपने सुदर्शन चक्र का आवाहन किया, लेकिन नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें उनके उद्देश्य की याद दिलाई। भगवान् का उद्देश्य कलियुग के आशाहीन पतितों का उद्धार करना था और जगाइ तथा माधाइ दोनों भाई ऐसे पतितों के विलक्षण उदाहरण

थे। इस युग की नब्बे प्रतिशत जनता उच्च कुल में जन्म लेने तथा सांसारिक सम्मान प्राप्त करने के बावजूद भी इन दोनों भाइयों के समान है। प्रामाणिक शास्त्रों का निर्णय है कि इस युग की सारी जनता निम्नतम शूद्र गुणों वाली या इससे भी नीच होगी। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने कभी जन्म के आधार पर परम्परागत जाति प्रथा को स्वीकार नहीं किया, अपितु उन्होंने किसी के स्वरूप, वास्तविक पहचान के विषय में शास्त्रों के निर्णय का ही पुरजोर पालन किया।

जब भगवान् अपने सुदर्शन चक्र का आवाहन कर रहे थे और नित्यानन्द प्रभु उनसे दोनों भाइयों को क्षमा करने का अनुनय कर रहे थे, तब तो वे दोनों भाई भगवान् के चरणकमलों पर गिर पड़े और अपने इस अभद्र आचरण के लिए उनकी क्षमा माँगने लगे। नित्यानन्द प्रभु ने भी प्रायश्चित्त करने वाले उन जीवों को स्वीकारने के लिए प्रार्थना की और महाप्रभु ने उन दोनों को इस शर्त पर अपनाने का स्वीकार किया कि अब वे अपने पाप कर्मों तथा व्यसनों का सर्वथा परित्याग कर देंगे। इस पर दोनों भाई राजी हो गये और उन्होंने अपनी समस्त पापमय आदतों को छोड़ देने का वचन दिया। दयालु भगवान् ने उन्हें स्वीकार कर लिया और फिर कभी उनके विगत दुष्कर्मों का उल्लेख नहीं किया।

यह भगवान् चैतन्य का विशिष्ट दयाभाव है। इस युग में कोई भी यह नहीं कह सकता कि वह पाप से मुक्त है। किसी के लिए भी ऐसा कह पाना असम्भव है। लेकिन भगवान् चैतन्य सभी प्रकार के पापी व्यक्तियों को इस शर्त के साथ स्वीकार करते हैं कि वे प्रामाणिक गुरु से दीक्षा लेने के बाद पापमय आदतों से विरत होने की प्रतिज्ञा करें।

इन दोनों भाइयों की घटना से कई शिक्षाएँ ग्रहण की जा सकती

हैं। इस कलियुग में प्राय: सारे लोग जगाइ तथा माधाइ की ही तरह के हैं। यदि वे अपने दुष्कृत्यों के बन्धन से छूटना चाहते हैं, तो उन्हें भगवान् चैतन्य महाप्रभु की शरण ग्रहण करनी चाहिए और आध्यात्मिक दीक्षा लेने के बाद उन बातों से दूर रहना चाहिए, जिनकी शास्त्रों में मनाही की गई है। भगवान् ने श्रील रूप गोस्वामी को जो शिक्षाएँ दी हैं, उनमें इन निषेधात्मक नियमों का वर्णन है।

श्रीनिवास के घर पर चमत्कार

अपने गृहस्थ जीवन में महाप्रभु ने अधिक चमत्कार नहीं दिखाये, जिनकी आशा ऐसे महापुरुषों से की जाती है। लेकिन एक बार श्रीनिवास ठाकुर के घर में जब संकीर्तन अपनी चरम सीमा में था,

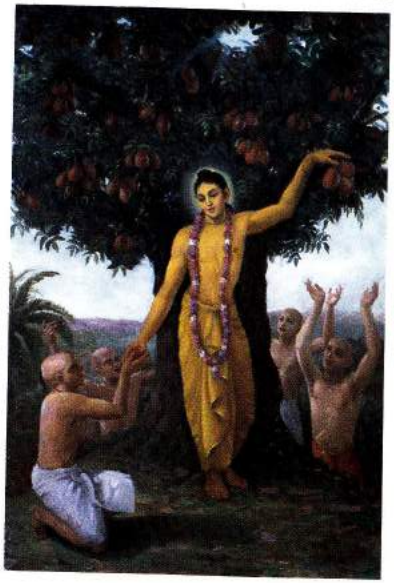

तब उन्होंने एक आश्चर्यजनक चमत्कार अवश्य किया था। उन्होंने भक्तों से पूछा कि वे क्या खाना चाहते हैं? जब उन्हें बताया गया कि वे आम खाना चाहते थे, तो उन्होंने आम की एक गुठली मंगवाई, यद्यपि वह फल उस ऋतु के बाहर का था। जब आम की गुठली ला दी गई, तो उन्होंने उसे श्रीनिवास के आँगन में बो दिया और तुरन्त ही उस बीज से एक पौधा अंकुरिक

होने लगा। देखते ही देखते पौधे ने अविलम्ब पूर्ण विकसित आम के वृक्ष का रूप धारण कर लिया, जो भक्तगण खा सके उससे ज्यादा पके फलों के भार से झुका हुआ था। यह वृक्ष श्रीनिवास के आँगन में लगा रहा और भक्तगण इससे इच्छानुसार फल प्राप्त करते रहे।

महाप्रभु द्वारा संन्यास स्वीकार करना

व्रजभूमि (वृन्दावन) की गोपियों में श्रीकृष्ण के लिए जो अनुराग था, उसके प्रति महाप्रभु के हृदय में अत्यधिक आदर था और भगवान् के प्रति उन सबकी अनन्य सेवा के सम्मान में एक बार श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् के नाम-कीर्तन के स्थान पर गोपियों का पवित्र नाम लेने लगे। उस समय उनके कुछ विद्यार्थी जो उनके शिष्य भी थे, उन्हें मिलने वहाँ आये और जब उन्होंने महाप्रभु को गोपियों का नाम उच्चारण करते देखा, तो उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने निरी मूर्खतावश महाप्रभु से पूछा कि वे गोपियों का नाम लेकर क्यों कीर्तन कर रहे हैं और उन्हें परामर्श दिया कि वे कृष्ण-नाम का कीर्तन करें। इस समय भावावेश में स्थित महाप्रभु उन मूर्ख शिष्यों द्वारा विचलित कर दिये गये। उन्होंने उन्हें फटकार लगाई और भगा दिया। ये विद्यार्थी लगभग महाप्रभु की ही आयु के थे, अतएव वे भ्रमवश उन्हें अपने समकक्ष समझ बैठे थे। फिर उन्होंने एक बैठक की और यह तय किया कि यदि वे फिर से उन्हें इसी तरह डांटेंगे, तो उन पर आक्रमण कर दिया जायेगा। इस घटना से सामान्य जनता में महाप्रभु के विषय में कुछ द्वेषपूर्ण बातें फैल गईं।

जब महाप्रभु को इसका पता चला, तो वे समाज में रहनेवाले विभिन्न प्रकार के मनुष्यों पर विचार करने लगे। उन्होंने ध्यान में लिया

कि विशेष रूप से विद्यार्थी, प्राध्यापक, सकाम कर्मी, योगी, अभक्त तथा विभिन्न प्रकार के नास्तिक ही भगवान की भक्तिमय सेवा के विरोधी होते हैं। अतएव उन्होंने विचार किया, "मेरा ध्येय है इस युग के सभी पतितात्माओं का उद्धार करना, किन्तु यदि वे मुझे एक सामान्य व्यक्ति मानकर मेरे प्रति अपराध करते हैं, तो इससे उन्हें लाभ नहीं हो सकता। यदि उन्हें आध्यात्मिक अनुभूति के जीवन का प्रारम्भ करना है, तो उन्हें किसी न किसी रूप में मुझको नमस्कार करना होगा।" इस प्रकार महाप्रभु ने संन्यास आश्रम ग्रहण करने का निश्चय किया, क्योंकि जन-सामान्य की प्रवृत्ति संन्यासी का सम्मान करने की रहती है।

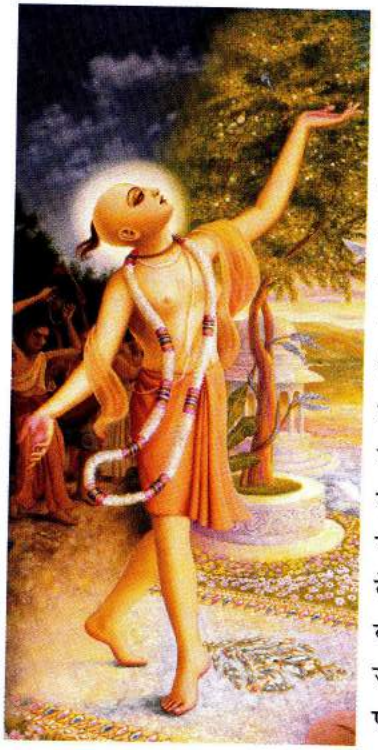

पाँच सौ वर्ष पूर्व समाज की दशा आज की तरह गिरी हुई न थी। उन दिनों लोग संन्यासी का आदर करते थे और संन्यासी भी संन्यास आश्रम के विधि-विधानों का पालन करने में कट्टर होते थे। श्री चैतन्य महाप्रभु इस कलियुग में संन्यासी जीवन बिताने के बहुत पक्ष में न थे, जिसका कारण केवल यह था कि इस युग के बहुत कम संन्यासी संन्यास जीवन के विधि-विधानों का पालन करने में सक्षम होते हैं।

लेकिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण करके आदर्श संन्यासी बनने का निश्चय किया, जिससे सामान्य जनता उनका सम्मान कर सकें। चूँकि संन्यासी को समस्त वर्णों तथा आश्रमों का गुरु माना जाता है, अतएव प्रत्येक व्यक्ति संन्यासी का आदर करने के लिए कर्तव्यबद्ध है।

जब वे संन्यास ग्रहण करने की सोच ही रहे थे कि एक ऐसी घटना घटी कि केशव भारती नामक मायावादी सम्प्रदाय के एक संन्यासी जो (बंगाल में) कटवा के निवासी थे, नवद्वीप आये और महाप्रभु ने उन्हें अपने यहाँ भोजन पर आमन्त्रित किया। जब केशव भारती उनके घर पहुँचे, तो महाप्रभु ने उनसे संन्यास प्रदान करने का अनुरोध किया। यह मात्र औपचारिकता थी। संन्यास सदैव किसी अन्य संन्यासी से ग्रहण किया जाता है। यद्यपि महाप्रभु सभी तरह से स्वतन्त्र थे, तो भी शास्त्रों की औपचारिकता की रक्षा करने के लिए उन्होंने केशव भारती से संन्यास ग्रहण किया, यद्यपि वे वैष्णव सम्प्रदाय के न थे।

केशव भारती से विचार-विमर्श करके महाप्रभु ने औपचारिक रूप से संन्यास ग्रहण करने के लिए नवद्वीप से कटवा के लिए प्रस्थान किया। उनके साथ श्रील नित्यानन्द प्रभु, चन्द्रशेखर आचार्य तथा मुकुन्द दत्त थे। इन तीनों ने इस संस्कार में उनकी सहायता की। महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने की इस घटना का वर्णन श्रील वृन्दावन दास ठाकुर कृत 'चैतन्य-भागवत' में विस्तार से किया गया है।

इस प्रकार अपने चौबीसवें वर्ष की समाप्ति पर माघ मास में महाप्रभु ने संन्यास आश्रम स्वीकार किया। इस आश्रम को स्वीकार करने के बाद वे *भागवत-धर्म* के पूर्णरूपेण उपदेशक बन गये। यद्यपि

वे अपने गृहस्थ जीवन में भी यही उपदेश-कार्य करते थे, किन्तु जब उन्हें अनुभव हुआ कि उनके प्रचार में कुछ बाधाएँ आ रही हैं, तो उन्होंने पतितात्माओं के उद्धार लिए अपने गृहस्थ जीवन के सारे सुखों का बलिदान कर दिया। उनके गृहस्थ जीवन में श्रील अद्वैत प्रभु तथा श्रील श्रीवास ठाकुर उनके मुख्य सहायक थे, किन्तु संन्यास आश्रम ग्रहण करने के बाद उनके मुख्य सहायक नित्यानन्द प्रभु, जिन्हें विशेष रूप से बंगाल में प्रचार कार्य के लिए नियुक्त किया था और श्रील रूप तथा सनातन गोस्वामी आदि षड्गोस्वामी (रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, जीव गोस्वामी, गोपाल भट्ट गोस्वामी, रधुनाथ दास गोस्वामी तथा रघुनाथ भट्ट गोस्वामी) थे। श्री रूप तथा सनातन गोस्वामी को वृन्दावन जाकर आज के तीर्थस्थानों की खुदाई करके प्रस्थापित करने के लिए नियुक्त किया गया। इस प्रकार भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा से आधुनिक वृन्दावन नगरी तथा व्रजभूमि की महत्ता का प्रकटीकरण हो सका।

अद्वैत प्रभु के घर पर महाप्रभु

महाप्रभु के संन्यास ग्रहण करने के बाद उन्होंने तुरन्त वृन्दावन रवाना होने की इच्छा प्रकट की। वे तीन दिनों तक लगातार राढ़ देश में (वह स्थान जहाँ गंगा नहीं बहती) यात्रा करते रहे। वे वृन्दावन जाने के विचार में पूर्ण भावावेश में थे। लेकिन श्रील नित्यानन्द ने उनका मार्ग बदल दिया और इसके बदले उन्हें अद्वैत प्रभु के घर शान्तिपुर ले आये। महाप्रभु श्री अद्वैत प्रभु के घर पर कुछ दिन ठहरे रहे। श्री अद्वैत प्रभु ने यह भलीभाँति जानते हुए कि महाप्रभु अब सदा के लिए अपना घरबार छोड़ रहे हैं, उनकी माता शची को अपने पुत्र से अन्तिम भेंट करने के लिए नवद्वीप से बुलवा लाने के लिए अपने आदमी भेजे। कुछ धूर्तों का कहना है कि संन्यास ग्रहण करने के बाद महाप्रभु अपनी पत्नी से भी मिले और उन्हें पूजा के लिए अपनी पादुका दीं, लेकिन प्रामाणिक स्रोतों से ऐसी भेंट की कोई सूचना प्राप्त नहीं होती है। उनकी माँ उनसे अद्वैत प्रभु के घर में मिलीं और जब उन्होंने अपने पुत्र को संन्यास धारण किये देखा, तो विलाप करने लगीं। उन्होंने समझौते के रूप में अपने पुत्र से प्रार्थना की कि वे पुरी को अपना केन्द्र बनाएँ, जिससे उन्हें उनके समाचार मिलते रहें। महाप्रभु ने अपनी प्यारी माँ की इस अंतिम इच्छा को शिरोधार्य किया। इस घटना के बाद महाप्रभु ने नवद्वीप के सारे निवासियों को उनके वियोग के शोक-सागर में निमग्न छोड़कर पुरी के लिए प्रस्थान किया।

महाप्रभु की जगन्नाथ पुरी की यात्रा

महाप्रभु ने पुरी जाते हुए मार्ग में अनेक महत्त्वपूर्ण स्थानों की

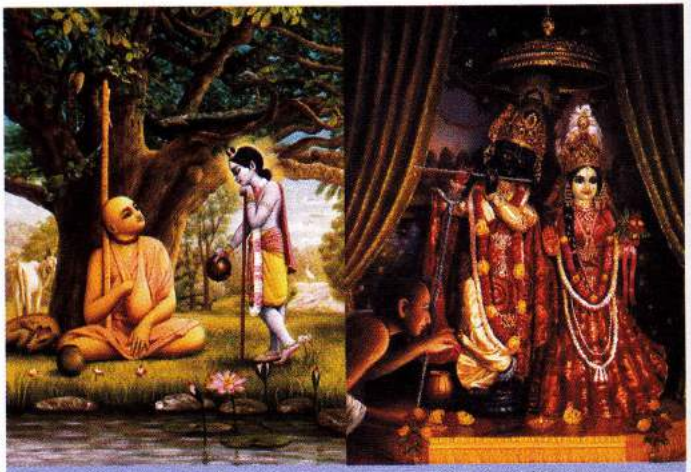

माधवेन्द्र पुरी क्षीरचोरा-गोपीनाथ

मुलाकात ली। उन्होंने गोपीनाथजी के मन्दिर का दर्शन किया, जिन्होंने अपने भक्त श्रील माधवेन्द्र पुरी के लिए खीर चुरायी थी। तब से गोपीनाथजी 'क्षीरचोरा-गोपीनाथ' कहलाते हैं। महाप्रभु ने बड़े चाव से इस कथा का आस्वादन किया। चुराने की प्रवृत्ति परम चेतना तक में पाई जाती है, परन्तु यह प्रवृत्ति भगवान् द्वारा प्रदर्शित की गई थी, अतएव इसकी विपरीत प्रकृति समाप्त हो गई और इस परम विचार के आधार पर चैतन्य महाप्रभु द्वारा भी यह पूजनीय बन गई कि भगवान् तथा उनकी यह चौरवृत्ति एक तथा अभिन्न है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने *चैतन्य-चरितामृत* में गोपीनाथजी की इस रोचक कथा का विस्तार से वर्णन किया है।

उड़ीसा में बालासोर स्थित रेमुणा के क्षीरचोरा-गोपीनाथ मन्दिर में दर्शन करने के बाद महाप्रभु पुरी की ओर चल पड़े और रास्ते में उन्होंने साक्षी-गोपाल मन्दिर की मुलाकात ली, जो दो ब्राह्मण भक्तों

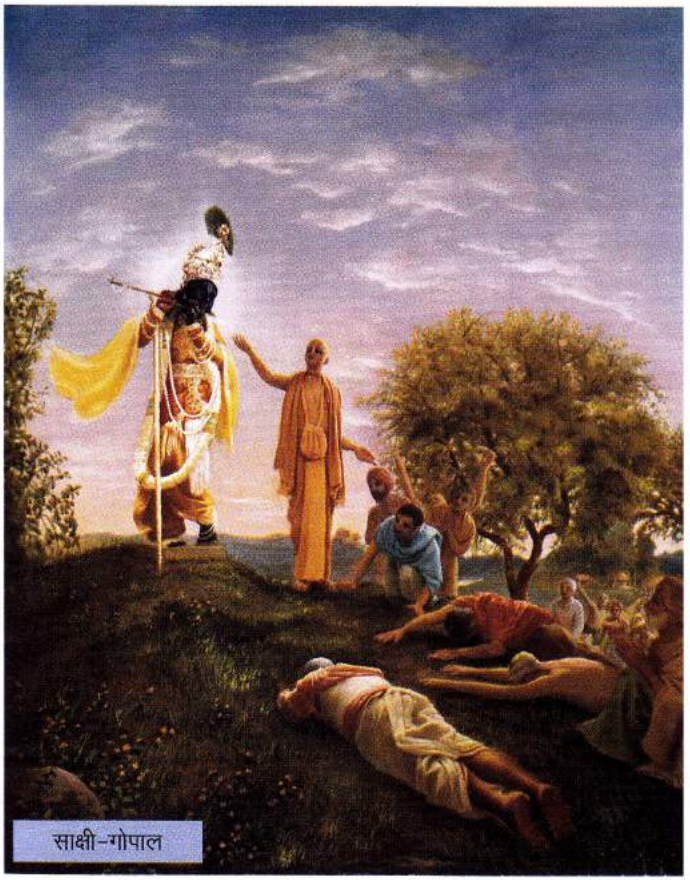

साक्षी-गोपाल

के पारिवारिक झगड़े के सम्बन्ध में साक्षी रूप में प्रकट हुए थे। उन्होंने साक्षी-गोपाल की कथा बड़े ही चाव से सुनी, क्योंकि वे नास्तिकों को यह बताना चाहते थे कि महान् आचार्यों द्वारा संस्तुत मन्दिरों के पूज्य अर्चाविग्रह कोरी मूर्तियाँ नहीं होती हैं, जैसाकि कम बुद्धि वाले लोग आरोप लगाते हैं। मन्दिर का विग्रह भगवान् का *अर्चा अवतार*

होता है। अतएव विग्रह सभी प्रकार से भगवान् से अभिन्न होता है। वे अपने प्रति भक्तों के प्रेम के अनुसार ही प्रतिभाव दिखाते हैं। साक्षी-गोपाल की कथा में दो भगवद्भक्तों के बीच पारिवारिक अनबन हो गई, तो भगवान् ने झगड़ा समाप्त करने तथा अपने सेवकों पर विशेष कृपा दिखाने के लिए वृन्दावन से उड़ीसा स्थित विद्यानगर गाँव तक अपने अर्चा-अवतार के रूप में यात्रा की। वहाँ से यह विग्रह कटक लाया गया, इसलिए आज भी हजारों तीर्थयात्री जगन्नाथपुरी जाते समय साक्षी-गोपाल मन्दिर के दर्शनार्थ आते हैं। महाप्रभु यहाँ रात्रि भर रुके और फिर उन्होंने पुरी के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में नित्यानन्द प्रभु ने उनका *संन्यास-दण्ड* तोड़ डाला, अत: महाप्रभु उन पर ऊपरी तौर से कुपित हुए और अपने सारे संगियों को पीछे छोड़कर अकेले ही पुरी चले गये।

महाप्रभु द्वारा भगवान् जगन्नाथ का दर्शन

पुरी में जब वे जगन्नाथ मन्दिर में प्रविष्ट हुए, तो वे दिव्य आनन्द से अभिभूत होने के कारण मन्दिर की फर्श पर अचेत होकर गिर पड़े। मन्दिर के रक्षक महाप्रभु के दिव्य भाव को समझ न पाये, लेकिन वहाँ पर सार्वभौम भट्टाचार्य नाम के एक महान् पण्डित उपस्थित थे, और वे समझ गये कि जगन्नाथ मन्दिर में प्रवेश करते ही उनका अचेत होना कोई सामान्य बात नहीं थी। सार्वभौम भट्टाचार्य उड़ीसा के राजा महाराज प्रतापरुद्र के दरबार में नियुक्त मुख्य पण्डित थे। वे श्री चैतन्य महाप्रभु की तरुणावस्था की कान्ति से आकृष्ट हुए और समझ गये कि ऐसी दिव्य समाधि विरले ही प्रदर्शित होती है और केवल उच्चकोटि के भक्तों द्वारा प्राप्त की जाती है, जो पहले से भौतिक अस्तित्व की

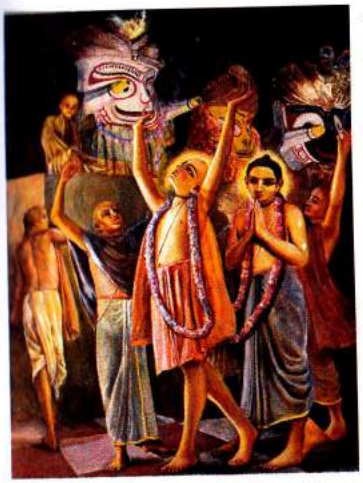

पूर्ण विस्मृति में दिव्य धरातल पर होते हैं। केवल मुक्तात्मा ही ऐसा दिव्य भाव प्रदर्शित कर सकता है। भट्टाचार्य महा विद्वान थे, अत: वे अपने परिचित दिव्य साहित्य के प्रकाश में इसे समझ गये। अतएव उन्होंने मन्दिर के रखवालों से कहा कि वे इस अज्ञात संन्यासी को कोई विघ्न न पहुँचाएँ। उन्होंने महाप्रभु को अपने घर ले चलने के लिए कहा, जिससे मूर्छित अवस्था में आगे उनका निरीक्षण किया जा सके। महाप्रभु को तुरन्त ही सार्वभौम भट्टाचार्य के घर ले जाया गया। उस समय सार्वभौम भट्टाचार्य सभा-पण्डित अर्थात् राज्य की ओर से संस्कृत साहित्य के प्रमुख होने के कारण अत्यधिक सत्ता-सम्पन्न थे। वे भगवान् चैतन्य के दिव्य भावों की सूक्ष्म परीक्षा करना चाहते थे, क्योंकि कभी-कभी धूर्त भक्त अबोध जनता को आकृष्ट करने और उनसे लाभ उठाने के उद्देश्य से भौतिक रूप से अद्भुत भाव विकारों की नकल करते हैं। भट्टाचार्य जैसे विद्वान ऐसे धूर्तों का पता लगा लेते हैं और पता चल जाने पर उन्हें तुरन्त ही अस्वीकृत कर देते हैं।

भगवत्प्रेम के भावावेश में महाप्रभु का अचेत होना

भट्टाचार्य ने भगवान् चैतन्य महाप्रभु की परीक्षा शास्त्रों में बताये गये समस्त लक्षणों के आधार पर की। उन्होंने एक वैज्ञानिक की तरह

परीक्षा की, मूर्ख भावावेशयुक्त व्यक्ति की तरह नहीं। उन्होंने पेट की गति, हृदय की धड़कन तथा नथुनों के श्वास का निरीक्षण किया। उन्होंने महाप्रभु की नाड़ी भी देखी और यह पाया कि उनकी शारीरिक क्रियाएँ पूर्णतया रुकी हुई हैं। जब उन्होंने नासिकाओं पर रुई का फाहा रखा, तो उन्होंने देखा कि श्वास कुछ-कुछ चल रही है, क्योंकि रुई के नर्म रेशे थोड़े हिल रहे थे। इस तरह वे जान गये कि महाप्रभु की मूर्छा-समाधि असली है, अतएव वे उनका उपचार निर्धारित विधि से करने लगे। लेकिन महाप्रभु का उपचार केवल विशेष ढंग से ही किया जा सकता था। वे तो अपने भक्तों द्वारा भगवन्नाम का उच्चारण करने पर ही होश में आ सकते थे। और यह विशिष्ट उपचार सार्वभौम भट्टाचार्य को ज्ञात न था, क्योंकि वे महाप्रभु को अभी जानते नहीं थे। जब भट्टाचार्य ने उन्हें पहले-पहल मन्दिर में देखा, तो उन्होंने अनेक यात्रियों में से उन्हें भी एक यात्री समझ लिया।

सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर महाप्रभु

इसी बीच महाप्रभु के संगी, जो उनसे कुछ ही बाद मन्दिर में पहुँचे थे, उन्होंने महाप्रभु के दिव्य भावों के विषय में तथा भट्टाचार्य द्वारा उनको ले जाये जाने का समाचार सुना। यात्रीगण अब भी मन्दिर में इस घटना के बारे में आपस में गपशप कर रहे थे। किन्तु संयोगवश इन यात्रियों में से एक गोपीनाथ आचार्य को मिल चुका था और गदाधर पण्डित गोपीनाथ आचार्य को जानते थे। अत: उनसे यह जानकारी मिली कि महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य के निवासस्थान पर मूर्छित अवस्था में पड़े हैं। श्री भट्टाचार्य गोपीनाथ आचार्य के साले थे। गदाधर पण्डित ने मंडली के सभी सदस्यों का परिचय गोपीनाथ

आचार्य से कराया, जो उन्हें भट्टाचार्य के यहाँ ले गये, जहाँ महाप्रभु आध्यात्मिक समाधि में मूर्छित पड़े थे। तब मंडली के सभी सदस्यों ने सदा की भाँति हरि के नाम का जोर-जोर से कीर्तन किया। इससे महाप्रभु को पुन: चेतना प्राप्त हो गई। तत्पश्चात् भट्टाचार्य ने मंडली के सभी सदस्यों का स्वागत किया, जिनमें नित्यानन्द प्रभु भी सम्मिलित थे और उन सबों से आतिथ्य स्वीकार करने के लिए कहा। तब महाप्रभु सहित मंडली समुद्र में स्नान करने गई और भट्टाचार्य ने काशी मिश्र के घर में उनके रहने तथा भोजन की व्यवस्था कर दी। उनके बहनोई गोपीनाथ आचार्य ने भी मदद की। उन साले बहनोई दोनों में महाप्रभु की दिव्यता को लेकर मैत्रीपूर्ण बातें होती रहीं और गोपीनाथ आचार्य ने अपने पूर्व परिचय के कारण अपने तर्कों से स्थापित करना चाहा कि महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं और भट्टाचार्य ने उन्हें एक महान् भक्त सिद्ध करना चाहा। शास्त्रों की दृष्टि से दोनों अपने-अपने तर्क देते रहे; वे किसी भावुकता से प्रेरित नहीं थे। ईश्वर के अवतारों को प्रामाणिक शास्त्रों के आधार पर निश्चित किया जाता है, न कि मूर्ख सिरफिरों के जनमतों से। भगवान् चैतन्य ईश्वर के वास्तविक अवतार थे, किन्तु सिरफिरों ने इस युग में शास्त्रों का हवाला दिये बिना ही अनेक तथाकथित ईश्वर-अवतारों की घोषणा कर दी है। लेकिन सार्वभौम भट्टाचार्य या गोपीनाथ आचार्य ऐसी मूर्खतापूर्ण भावुकता से प्रेरित नहीं थे; इसके विपरीत उन दोनों ने उनकी दिव्यता को प्रामाणिक शास्त्रों के बल पर स्थापित करने या अस्वीकार करने का प्रयत्न किया।

सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा वेदों की शिक्षा

बाद में यह पता चला कि भट्टाचार्य भी नवद्वीप क्षेत्र के रहने वाले

थे और उनसे यह ज्ञात हुआ कि भगवान् चैतन्य के नाना, नीलाम्बर चक्रवर्ती, सार्वभौम भट्टाचार्य के पिता के सहपाठी थे। इस रूप में तरुण संन्यासी चैतन्य महाप्रभु के प्रति भट्टाचार्य में वात्सल्य उत्पन्न हुआ। भट्टाचार्य महाशय शंकराचार्य सम्प्रदाय के अनेक संन्यासियों के प्राचार्य थे और वे स्वयं भी उसी सम्प्रदाय से जुड़े थे। अत: भट्टाचार्य चाहने लगे कि यह तरुण संन्यासी भगवान् चैतन्य भी उनसे वेदान्त का उपदेश सुने।

शंकर सम्प्रदाय के अनुयायियों को सामान्य रूप से वेदान्ती कहा जाता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वेदान्त अध्ययन पर शंकर-सम्प्रदाय का एकाधिकार है। वेदान्त का अध्ययन सारे प्रामाणिक सम्प्रदायों द्वारा किया जाता है, किन्तु उनकी अपनी-अपनी व्याख्याएँ हैं। लेकिन शंकर-सम्प्रदाय वाले सामान्यतया वेदान्ती वैष्णवों के ज्ञान के बारे में अनजान रहते हैं। इसीलिए सर्वप्रथम, रचयिता को वैष्णवों ने भक्तिवेदान्त उपाधि से विभूषित किया।

महाप्रभु ने भट्टाचार्य से वेदान्त पर शिक्षा ग्रहण करनी स्वीकार कर ली और वे दोनों भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर में साथ साथ बैठे। भट्टाचार्य सात दिनों तक लगातार बोलते रहे और महाप्रभु पूरे ध्यान से उन्हें सुनते रहे, लेकिन उन्होंने कुछ प्रतिभाव नहीं दिया। महाप्रभु की चुप्पी ने भट्टाचार्य के मन में कुछ सन्देह उत्पन्न कर दिया, अतएव उन्होंने पूछा कि महाप्रभु ने उनकी वेदान्त व्याख्या के विषय में कोई प्रश्न क्यों नहीं किया या कोई टिप्पणी क्यों नहीं की।

वेदान्त-सूत्र की महाप्रभु द्वारा दी गई व्याख्या

महाप्रभु तो भट्टाचार्य के समक्ष अपने को मूर्ख विद्यार्थी बनाये रहे

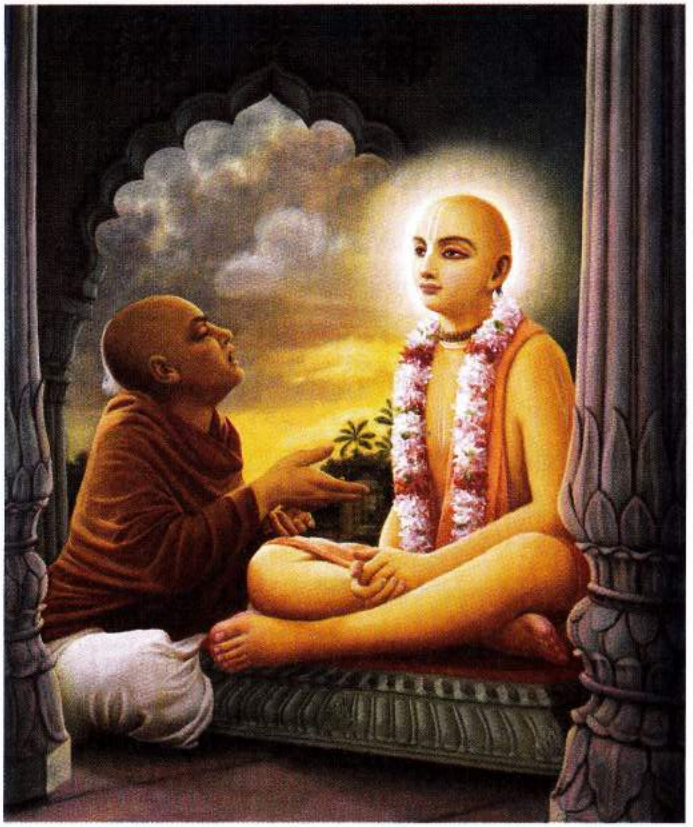

और ऐसा स्वांग किया कि वे उनसे वेदान्त इसीलिए सुन रहे हैं, क्योंकि भट्टाचार्य का मानना था कि यह संन्यासी का धर्म है। लेकिन महाप्रभु उनके भाषणों से सहमत नहीं थे। इससे भगवान् ने इंगित किया कि कोई चाहे शंकर-सम्प्रदाय के तथाकथित वेदान्ती हों या किसी अन्य सम्प्रदाय के, जो श्रील व्यासदेव के आदेशों का पालन नहीं करते, वे वेदान्त के यंत्रवत् विद्यार्थी हैं। वे इस महान् ज्ञान से

पूर्ण रूप से अवगत नहीं होते। *वेदान्त-सूत्र* की व्याख्या व्यासदेव ने स्वयं *श्रीमद्भागवत* के मूल पाठ में दे दी है। जिसे *भागवत्* का ज्ञान नहीं है, वह कठिनाई से ही समझ पाएगा कि वेदान्त का मर्म क्या है।

भट्टाचार्य बहुश्रुत विद्वान होने के कारण लोकप्रिय वेदान्तियों पर महाप्रभु के व्यंग्यात्मक आक्षेप को समझ गये। अतएव उन्होंने पूछा कि यदि कोई बात समझ में नहीं आती, तो पूछते क्यों नहीं। भट्टाचार्य उनके इतने दिन तक मौन रहने का प्रयोजन समझ गये। इससे स्पष्ट हो गया कि महाप्रभु के मन में कुछ और था; अतएव भट्टाचार्य ने उनसे प्रार्थना की कि वे अपने मन की बात प्रकट कर दें।

तथाकथित वेदानियों द्वारा *वेदान्त-सूत्र* का अप्रत्यक्ष अर्थघटन

इस पर महाप्रभु इस प्रकार बोले : "हे महाशय, मैं *वेदान्त-सूत्र* के *जन्माद्यस्य यतः, शास्त्र योनित्वात्* तथा *अथातो ब्रह्मजिज्ञासा* जैसे सुत्रों के अर्थों को तो समझता हूँ, लेकिन जब आप इनकी व्याख्या अपने खुद के ढंग से करते हैं, तो उन्हें समझ पाना मेरे लिए कठिन हो जाता है। सूत्रों का प्रयोजन पहले से उन्हीं में वर्णित है, लेकिन आपकी व्याख्याएँ उन्हें किसी और बात से प्रच्छन्न कर देती हैं। आप जानबूझकर सूत्रों का सीधा अर्थ ग्रहण न करके अप्रत्यक्ष रूप से अपनी व्याख्याएँ देते हैं।"

इस प्रकार महाप्रभु ने उन सारे वेदान्तियों पर आक्रमण किया, जो अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति के उद्देश्य से सीमित चिन्तन शक्ति के अनुसार *वेदान्त-सूत्रों* की अपनी स्वयं की व्याख्या कलात्मक रूप में करते हैं। यहाँ पर *वेदान्त-सूत्र* जैसे प्रामाणिक साहित्य की ऐसी

अप्रत्यक्ष व्याख्याओं की महाप्रभु द्वारा भर्त्सना की गई है।

व्यासदेव की व्याख्या प्रामाणिक है

महाप्रभु ने आगे कहा : "श्रील व्यासदेव ने *वेदान्त-सूत्र* में उपनिषदों के मन्त्रों के प्रत्यक्ष अर्थों का सारांश दे दिया है। दुर्भाग्यवश आप उनके प्रत्यक्ष अर्थों को ग्रहण नहीं कर रहे हैं। आप अप्रत्यक्ष रूप से उनका अर्थ भिन्न प्रकार से कर रहे हैं।

"वेदों के प्रमाण को चुनौति देने की कोई गुंजाईश ही नहीं है और इसमें संशय का प्रश्न ही नहीं है। जो कुछ वेदों में कहा गया है, उसे पूरा-पूरा स्वीकार करना चाहिए, अन्यथा यह वेदों के प्रमाण को चुनौती देना है।

"शंख तथा गोबर दो विभिन्न जीवों के हाड़ तथा विष्ठा हैं। लेकिन चूँकि वेदों ने इन्हें शुद्ध कहा है, अतएव लोग उन्हें इस तरह स्वीकार करते हैं, क्योंकि वेद प्रमाण हैं।"

भाव यह है कि कोई भी व्यक्ति अपने अपूर्ण तर्क को वेदों के ऊपर नहीं लाद सकता। वेदों के आदेशों को यथारूप में, किसी लौकिक तर्क के बिना मानना चाहिए। वैदिक आदेश के तथाकथित अनुयायी वैदिक आदेशों की अपने खुद के ढंग से व्याख्याएँ करते रहते हैं और इस तरह वे वैदिक धर्म के विभिन्न पक्ष तथा पन्थ स्थापित करते चलते हैं। भगवान् बुद्ध ने प्रत्यक्ष रूप से वेदों के प्रमाण को अस्वीकार किया और उन्होंने अपना निजी धर्म स्थापित किया। इसीलिए वेदों के दृढ़ अनुयायियों को बौद्ध धर्म स्वीकार्य नहीं हुआ। लेकिन वेदों के तथाकथित अनुयायी बौद्धों से भी अधिक हानिकर हैं। बौद्धों में वेदों को प्रत्यक्ष रूप से इनकार करने का साहस है,

लेकिन वेदों के तथाकथित अनुयायियों में ऐसा साहस भी नहीं है, यद्यपि वे अप्रत्यक्ष रूप में वेदों के सारे आदेशों का उल्लघंन करते हैं। भगवान् चैतन्य ने इसकी भर्त्सना की।

इस प्रसंग में महाप्रभु द्वारा दिये गये शंख तथा गोबर के उदाहरण अत्यन्त युक्तिसंगत हैं। यदि कोई यह तर्क करे कि चूँकि गाय का गोबर शुद्ध है, अत: विद्वान ब्राह्मण का मल उससे भी अधिक पवित्र होना चाहिए, तो उसका यह तर्क स्वीकार्य नहीं होगा। गोबर तो मान्य होगा, किन्तु उच्च पदासीन ब्राह्मण का मल अमान्य होगा। महाप्रभु ने आगे कहा :

"वैदिक आदेश स्वत: प्रमाण हैं और यदि कोई संसारी प्राणी वेदों की व्याख्याओं को समंजित करता है, तो वह उनके प्रमाण को चुनौती देता है। अपने आपको श्रील व्यासदेव की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान समझना मूर्खता है। उन्होंने अपने सूत्रों में पहले ही अपनी बात कह दी है, अतएव कम महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से सहायता लेने की आवश्यकता नहीं है। वेदान्त-सूत्र नामक उनकी यह कृति मध्याह्न के सूर्य की भाँति प्रकाशित है, और जब कोई सूर्य-सदृश स्वयं-प्रकाशित वेदान्त-सूत्र पर अपनी खुद की व्याख्याएँ करना चाहता है, तो वह इस सूर्य को अपनी कल्पना के बादल से प्रच्छन्न करने का प्रयास करता है।

"उद्देश्य की दृष्टि से वेद और पुराण एक ही हैं। वे उस परम सत्य का समर्थन करते हैं, जो अन्य प्रत्येक वस्तु से महान् है। परम सत्य का साक्षात्कार अन्तत: भगवान् के परम व्यक्तित्व के रूप में होता है, जो परम नियन्ता हैं। अत: परम भगवान् ऐश्वर्य, शक्ति, ख्याति, सौन्दर्य, ज्ञान और त्याग से परिपूर्ण होने चाहिए। तथापि आश्चर्य है कि दिव्य भगवान् के व्यक्तित्त्व को निराकार समझा जाता है।"

भगवान् का व्यक्तित्व सर्वोपरि तथा अन्तिम सत्ता है

"वेदों में परम सत्य का निराकार वर्णन परम पूर्ण की भौतिक धारणा का निराकरण करने के लिए किया जाता है। भगवान् के व्यक्तिगत लक्षण सभी प्रकार के भौतिक लक्षणों से सर्वथा भिन्न होते हैं। सारे जीव पृथक्-पृथक् व्यक्ति हैं और वे सभी परम पूर्ण के अंश हैं। यदि अंश पृथक्-पृथक् व्यक्ति हैं, तो फिर उनका उद्भव-स्रोत निराकार कैसे हो सकता है ? वे समस्त सापेक्ष व्यक्तियों में परम व्यक्ति (परम पुरुष) हैं।

"वेद हमें बताते हैं कि प्रत्येक वस्तु उनसे (ब्रह्म से) उत्पन्न होती है और उन्हीं पर आश्रित रहती है। संहार के बाद प्रत्येक वस्तु उन्हीं में लीन हो जाती है। अतएव वे सभी कारणों के उपादान-कारण, कर्ता-कारण तथा निमित्त-कारण रूप हैं। ये सारे कारण किसी निराकार वस्तु के लक्षण नहीं बन सकते।

"वेद हमें बताते हैं कि वे ही एक से अनेक हुए और जब वे इच्छा करते हैं, तब वे भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात करते हैं। उन्होंने भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात किया, उसके पहले यह भौतिक विराट

जगत न था। अतएव उनका दृष्टिपात भौतिक नहीं है। जब भगवान् ने भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात किया, तब भौतिक मन या इन्द्रियों का जन्म नहीं हुआ था। इस तरह वेद का साक्ष्य सिद्ध करता है कि निश्चित रूप से भगवान् के दिव्य नेत्र तथा दिव्य मन होते हैं। वे भौतिक नहीं होते। अतएव उनका निराकार पक्ष उनकी भौतिकता का निषेध है, लेकिन यह उनके दिव्य व्यक्तित्व से इनकार नहीं करता।

"ब्रह्म अन्ततः भगवान् के व्यक्तित्व का सूचक है। निराकार ब्रह्म की अनुभूति लौकिक सृष्टि की निषेधात्मक धारणा है। सभी प्रकार के भौतिक शरीरों में स्थित ब्रह्म का स्थानीय पक्ष परमात्मा हैं। अन्ततः परम ब्रह्म की अनुभूति प्रामाणिक शास्त्रों के समस्त साक्ष्य के अनुसार भगवान् के व्यक्तित्व की ही अनुभूति है। वे *विष्णुतत्त्वों* के परम स्रोत हैं।

"पुराण भी वेदों के पूरक हैं। सामान्य व्यक्ति के लिए वैदिक मंत्रों को समझ पाना अत्यन्त मुश्किल है। स्त्रियाँ, शूद्र और तथाकथित उच्चजाति के द्विजबन्धु वेदों के अभिप्राय को समझ पाने में असमर्थ होते हैं। इस प्रकार वेदों के सत्य की व्याख्या करने के लिए *महाभारत* तथा *पुराणों* को सरल बनाया गया। ब्रह्मा ने बालरूप श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा कि श्री नन्द महाराज तथा यशोदा माई इत्यादि व्रजभूमि के निवासियों का यह असीम सौभाग्य है कि सनातन परम सत्य उनके घनिष्ठ सम्बन्धी बने।

"वैदिक मन्त्र कहते हैं कि परम सत्य के हाथ और पैर नहीं होते, तब भी वे सबों से तेज चलते हैं और भक्तिभाव में उन्हें जो भी अर्पित किया जाता है, उसे वे ग्रहण करते हैं। ये कथन निश्चित रूप से भगवान् के साकार स्वरूप को बताने वाले हैं, यद्यपि उनके हाथ-पाँव भौतिक हाथ-पाँव या अन्य इन्द्रियों से भिन्न होते हैं।"

परम सत्य कभी भी निराकार नहीं होता

"अतः ब्रह्म कभी भी निराकार नहीं है, किन्तु जब ऐसे मन्त्रों की व्याख्या अप्रत्यक्ष रूप से की जाती है, तो गलती से परम सत्य को निराकार मान लिया जाता है। परम सत्य अर्थात् भगवान् का व्यक्तित्व समस्त ऐश्वर्यों से युक्त है, अतएव उनका रूप दिव्य है, जो सनातन अस्तित्व, ज्ञान तथा आनन्द से युक्त है। तो फिर कोई यह कैसे स्थापित कर सकता है कि परम सत्य निराकार है?

"ऐश्वर्यों से पूर्ण होने के कारण ब्रह्म को अनेक शक्तियों वाला माना जाता है और *विष्णु पुराण* (६.७.६०) के प्रमाण के अनुसार ये शक्तियाँ तीन प्रकार की हैं, क्योंकि उसमें उल्लेख है कि भगवान् विष्णु की दिव्य शक्तियाँ मूल रूप से तीन हैं। उनकी आध्यात्मिक शक्ति तथा जीवों की शक्ति को उच्चतर (परा) शक्ति कहा जाता है, जबकि भौतिक शक्ति निकृष्ट (अपरा) शक्ति है, जो अज्ञान से अंकुरित होती है।

"जीवों की शक्ति को *क्षेत्रज्ञ* शक्ति कहते हैं। यद्यपि यह *क्षेत्रज्ञ शक्ति* गुण में भगवान् के तुल्य है, लेकिन अज्ञान के कारण भौतिक शक्ति से परास्त हो जाती है और इस प्रकार समस्त प्रकार के भौतिक कष्टों से ग्रस्त रहती है। दूसरे शब्दों में, सारे जीव उच्चतर (आध्यात्मिक) तथा निकृष्ट (भौतिक) शक्तियों के मध्य तटस्था शक्ति के रूप में स्थित रहते हैं और जीव जिस अनुपात में भौतिक या आध्यात्मिक—इन दोनों शक्तियों के सम्पर्क में आता है, उसी के अनुसार वह उच्चतर तथा निम्नतर स्तरों पर अवस्थित होता है।

"जैसाकि ऊपर बताया गया है, भगवान् अपरा तथा तटस्था शक्तियों से परे हैं और उनकी आध्यात्मिक शक्ति तीन विभिन्न चरणों

में प्रकट होती है—शाश्वत अस्तित्व, शाश्वत आनन्द तथा शाश्वत ज्ञान। जहाँ तक शाश्वत अस्तित्व का सम्बन्ध है, वह *सन्धिनी* शक्ति द्वारा संचालित होता है। इसी प्रकार से आनन्द तथा ज्ञान क्रमश: *ह्लादिनी* तथा *संवित्* शक्तियों से संचालित होते हैं। परम शक्तिमान भगवान् के रूप में वे परा, तटस्थ तथा अपरा शक्तियों के परम नियन्ता हैं और ये विभिन्न शक्तियाँ शाश्वत भक्तिमय सेवा में भगवान् से सम्बन्धित होती हैं।

"इस प्रकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने दिव्य शाश्वत रूप में आनन्द भोग करते हैं, तो क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि कोई परमेश्वर को नि:शक्तिमान कहने का साहस करता है? भगवान् समस्त शक्तियों के नियन्ता हैं और सारे जीव इनमें से एक शक्ति के अंश हैं। अतएव भगवान् तथा जीव में जमीन-आसमान का अन्तर है। कोई यह कैसे कह सकता है कि भगवान् तथा जीव एक ही हैं? *भगवद्गीता* में भी जीवों को भगवान् की उच्चतर शक्ति से सम्बन्धित बताया गया है। शक्ति तथा शक्तिमान के मध्य घनिष्ठ सहसम्बन्ध के अनुसार भी वे दोनों अभिन्न हैं। अतएव भगवान् तथा जीव शक्ति तथा शक्तिमान के रूप में अभिन्न हैं।

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार—ये सभी भगवान् की निकृष्ट (अपरा) शक्तियाँ हैं। लेकिन जीव उच्चतर होने के कारण इन सबों से भिन्न है। यह *भगवद्गीता* (७.४) का कथन है।

"भगवान् के दिव्य रूप का शाश्वत अस्तित्व होता है तथा वह दिव्य आनन्द से परिपूर्ण है। तो फिर ऐसा रूप भौतिक सत्त्वगुण से किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है? अतएव जो भी भगवान् के स्वरूप पर विश्वास नहीं करता, वह निश्चय ही श्रद्धाविहीन असुर है, अस्पृश्य है, मनहूस है तथा यमराज द्वारा दण्डित होने योग्य है।

"बौद्धों को नास्तिक कहा जाता है, क्योंकि वे वेदों का आदर नहीं करते, लेकिन जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, जो लोग वेदों के अनुयायी होने की आड़ में वैदिक निर्णयों की अवहेलना करते हैं, वे निश्चित रूप से बौद्धों से भी अधिक खतरनाक हैं।

"श्री व्यासदेव ने कृपा करके अपने *वेदान्त-सूत्र* में वैदिक ज्ञान संकलित किया, लेकिन यदि कोई मायावाद सम्प्रदाय (जैसे कि शंकर-सम्प्रदाय द्वारा निरूपित) की व्याख्या सुने, तो निश्चित रूप से वह आत्म-साक्षात्कार के पथ से भटक जाएगा।

"सृष्टि-उत्पत्ति का सिद्धान्त *वेदान्त-सूत्र* का प्रारम्भिक विषय है। समस्त विराट जगत परमेश्वर से उनकी विभिन्न अचिन्त्य शक्तियों के द्वारा उद्भूत है। पारस के पत्थर का उदाहरण सृष्टि की उत्पत्ति के सिद्धान्त पर लागू होता है। पारस पत्थर लोहे की कितनी भी मात्रा को सोने में बदल सकता है, लेकिन फिर भी वह पारस पत्थर वैसा ही बना रहता है। इसी प्रकार परमेश्वर अपनी अचिन्त्य शक्तियों के द्वारा सारे दृश्य जगतों को उत्पन्न कर सकते हैं, तो भी वे पूर्ण तथा अपरिवर्तित बने रहते हैं। भगवान् पूर्ण हैं और यद्यपि उनसे अनेक पूर्ण उद्भूत होते हैं, फिर भी वे पूर्ण बने रहते हैं।

"मायावाद सम्प्रदाय के माया के—मिथ्यावाद के सिद्धान्त की वकालत इस आधार पर की जाती है कि सृष्टि-उत्पत्ति का सिद्धान्त परम सत्य में विकार का कारण बनेगा। यदि ऐसा है तो व्यासदेव झूठे हैं। इससे बचने के लिए उन्होंने बड़ी ही कुशलतापूर्वक मिथ्या (माया) का सिद्धान्त ढूँढ़ निकाला। लेकिन यह जगत या विराट सृष्टि मिथ्या नहीं है, जैसाकि मायावादी मानते हैं। केवल इसका स्थायी अस्तित्व नहीं होता। कोई अस्थायी वस्तु निरी मिथ्या नहीं कहला

सकती। लेकिन यह धारणा कि भौतिक शरीर आत्मा है, निश्चित ही असत्य है।

"वेदों में प्रणव (ॐ) अथवा ॐकार मूल मन्त्र है। यह दिव्य ध्वनि भगवान् के स्वरूप के समान ही है। वेद के सारे मन्त्र इसी प्रणव ॐकार पर आधारित हैं। *तत्त्वमसि* तो वैदिक साहित्य में एक गौण शब्द है; अत: यह वेदों का मूल मंत्र नहीं हो सकता। श्रीपाद शंकराचार्य ने मूल शब्द ॐकार के बजाय गौण शब्द *तत्त्वमसि* पर अधिक बल दिया है।"

इस तरह महाप्रभु ने *वेदान्त-सूत्र* पर अपना प्रवचन किया और मायावादी विचारधारा के सारे प्रचारों का खण्डन किया। यद्यपि भट्टाचार्य ने अपने आपको तथा अपने मायावादी सिद्धान्त को तर्क तथा व्याकरण के वाग्जाल से बचाने का प्रयत्न किया, लेकिन महाप्रभु ने अपने जोरदार तर्कों से उन्हें परास्त कर दिया। उन्होंने साधिकार कहा कि हम सब भगवान् से शाश्वत रूप से सम्बन्धित हैं और हमारे सम्बन्धों के आदान-प्रदान के लिए भक्तिमय सेवा ही हमारा शाश्वत कर्तव्य है। ऐसे आदान-प्रदान का परिणाम प्रेम या भगवत्प्रेम की प्राप्ति है। जब भगवत्प्रेम प्राप्त हो जाता है, तो अन्य जीवों के प्रति प्रेम स्वत: ही उत्पन्न होता है, क्योंकि भगवान् ऐसे समस्त जीवों के समाहार हैं।

महाप्रभु ने कहा कि ईश्वर के साथ शाश्वत सम्बन्ध, उनके साथ सम्बन्धों का आदान-प्रदान तथा उनके लिए प्रेम की उपलब्धि—इन तीन बातों को छोड़कर वेदों में जो कुछ भी शिक्षा दी गई है, वह व्यर्थ और मनगढंत है।

भगवान् ने आगे भी कहा कि श्रीपाद शंकराचार्य द्वारा पढ़ाया गया मायावाद दर्शन वेदों की काल्पनिक व्याख्या है, लेकिन उन्हें

(शंकराचार्य को) इसकी शिक्षा देनी ही थी, क्योंकि उन्हें ऐसा करने का भगवान् का आदेश था। *पद्म-पुराण* में कहा गया है कि भगवान् ने शिवजी को आदेश दिया कि वे मनुष्य जाति को उनसे (श्रीभगवान् से) पथभ्रष्ट करें। भगवान् को अपने आपको इस प्रकार प्रच्छन्न करना था, क्योंकि लोग अधिकाधिक सन्तान उत्पन्न करने के लिए प्रेरित हों। शिवजी ने देवी से कहा, "कलियुग में मैं ब्राह्मण के वेश में मायावाद दर्शन का उपदेश करूँगा, जो प्रच्छन्न बौद्धवाद ही है।"

भक्तिमय सेवा ही सर्वोच्च ध्येय है

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के इन प्रवचनों को सुनकर भट्टाचार्य आश्चर्यचकित हुए और स्तब्ध रह गये और उन्होंने मौन रहकर उनको देखते रहे। तब महाप्रभु ने उन्हें आश्वासन दिया कि इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। "मैं कहता हूँ कि *भगवान् की भक्तिमय सेवा करना ही मानव जीवन का सर्वोच्च ध्येय है।*" तब उन्होंने *भागवत* का एक श्लोक उद्धृत किया और उन्हें आश्वस्त किया कि आत्मा तथा आत्म-साक्षात्कार में लीन रहने वाले मुक्तात्मा भी भगवान् हरि की भक्ति करते हैं, क्योंकि भगवान् में इतने दिव्य गुण हैं कि वे मुक्तात्मा का भी हृदय आकृष्ट करने वाले हैं।

तब भट्टाचार्य ने *भागवत* के "आत्माराम" श्लोक (१.७.१०) की व्याख्या सुननी चाही। महाप्रभु ने भट्टाचार्य से कहा कि पहले वे इसकी व्याख्या करें, बाद में वे उसकी व्याख्या करेंगे। तब भट्टाचार्य ने पाण्डित्यपूर्ण ढंग से विशेष रूप से तर्कशास्त्र के सन्दर्भ में इस श्लोक की व्याख्या की। उन्होंने मुख्यतया तर्क के आधार पर इस श्लोक की नौ प्रकार से व्याख्या की, क्योंकि वे उस समय के

तर्कशास्त्र के सर्वाधिक प्रखर विद्वान थे।

भट्टाचार्य को सुनने के बाद महाप्रभु ने श्लोक की पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या के लिए उन्हें धन्यवाद दिया और तब भट्टाचार्य के अनुरोध पर उन्होंने इस श्लोक की ६४ विभिन्न प्रकार से व्याख्याएँ कीं और इनमें उन्होंने भट्टाचार्य की नौ व्याख्याओं को छुआ तक नहीं।

सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा महाप्रभु की शरण ग्रहण करना

इस प्रकार महाप्रभु से आत्माराम श्लोक की व्याख्या सुनने के बाद भट्टाचार्य को विश्वास हो गया कि किसी मर्त्य प्राणी के लिए ऐसी विद्वत्तापूर्ण व्याख्या कर पाना सम्भव नहीं है। इसके पूर्व श्री गोपीनाथ आचार्य ने उन्हें महाप्रभु की दिव्यता के सम्बन्ध में विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया था, लेकिन तब उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया था। परन्तु महाप्रभु द्वारा *वेदान्त-सूत्र* के प्रतिपादन तथा आत्माराम श्लोक की व्याख्याओं से भट्टाचार्य दंग थे, अतः वे सोचने लगे कि उन्होंने महाप्रभु को साक्षात् कृष्ण के रूप में न पहचानकर उनके चरणकमलों के प्रति घोर अपराध किया है। तब उन्होंने उनसे अपने पूर्वकृत व्यवहारों के लिए पश्चात्ताप करते हुए आत्म-समर्पण कर दिया और महाप्रभु ने दया करके भट्टाचार्य को स्वीकार कर लिया। अपनी अहैतुकी कृपा से महाप्रभु पहले अपने चतुर्भुज नारायण रूप में, फिर हाथ में वंशी लिए द्विभुजी कृष्ण रूप में प्रकट हुए।

सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा महाप्रभु की स्तुति

भट्टाचार्य तुरन्त ही भगवान् के चरणकमलों पर गिर पड़े और

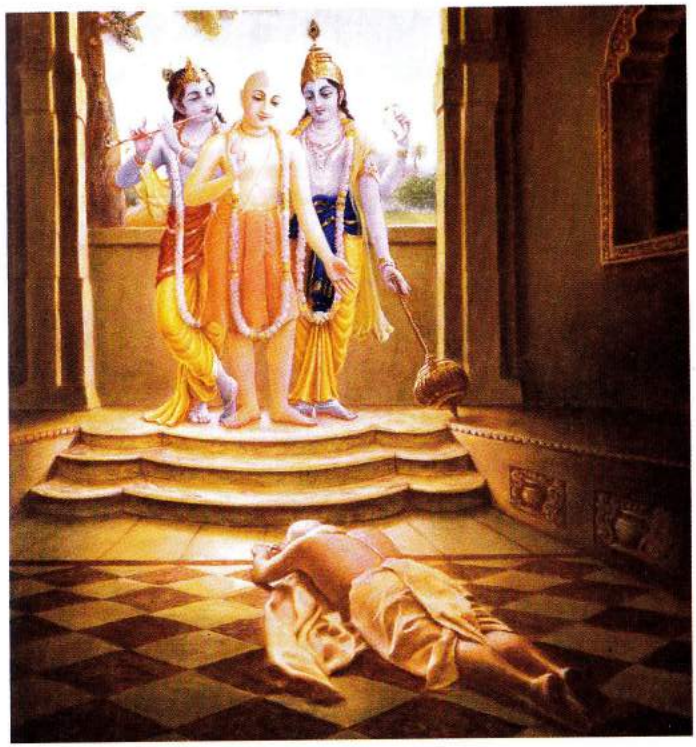

उन्हीं की कृपा से उनकी प्रशंसा में कई उपयुक्त श्लोकों की रचना की। उन्होंने भगवान् की प्रशंसा में लगभग एक सौ श्लोकों की रचना की। तब भगवान् ने उन्हें हृदय से लगाया और दिव्य आनन्द के कारण भट्टाचार्य अपने भौतिक जीवन की सुधि-बुधि खो बैठे। अश्रु, कम्प, हृदय-कम्पन, स्वेद, रोमाञ्च, नृत्य, गायन, क्रन्दन तथा समाधि के ये आठों लक्षण भट्टाचार्य के शरीर में प्रकट हो आये। श्री गोपीनाथ आचार्य अत्यन्त प्रसन्न हुए और भगवत्कृपा से अपने साले को इस तरह अद्भुत ढंग से बदलते हुए देखकर विस्मित हो गये।

भगवान् की प्रशंसा में भट्टाचार्य द्वारा रचित एक सौ उत्तम श्लोकों में से निम्नलिखित दो श्लोक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं और इन्हीं में भगवान् के जीवनकार्य का सार भी है।

१. मुझे उन भगवान् की शरण में जाने दो, जो अभी भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए हैं। वे करुणा के सागर हैं और वे अब भौतिक विरक्ति, ज्ञान तथा उनकी भक्तिमय सेवा सिखाने के लिए स्वयं अवतरित हुए हैं।

२. चूँकि भगवान् की शुद्ध भक्ति कालान्तर में विलीन हो चुकी है, अतएव उसके सिद्धान्तों को पुनरुज्जीवित करने के लिए भगवान् प्रकट हुए हैं, अत: मैं उनके चरणकमलों में प्रणाम करता हूँ।

महाप्रभु ने मुक्ति शब्द की व्याख्या करते हुए उसे विष्णु या भगवान् के समतुल्य बताया। मुक्ति प्राप्त करने का अर्थ है, भौतिक अस्तित्व से छुटकारा और यही है भगवान् की सेवा की प्राप्ति।

भगवान् की दक्षिण भारत की यात्रा

तत्पश्चात् महाप्रभु कुछ काल के लिए दक्षिण भारत की ओर चले गये और जो-जो उन्हें मार्ग में मिलते गये, उन्हें वे कृष्णभक्त बनाते गये। ऐसे भक्तों ने कई अन्यों को भी भक्ति सम्प्रदाय में या *भागवत धर्म* में सम्मिलित कर लिया। इस तरह वे गोदावरी के तट पर पहुँचे, जहाँ उनकी भेंट उड़ीसा के राजा, महाराज प्रतापरुद्र के अधीन मद्रास के गवर्नर श्रील रामानन्द राय से हुई। रामानन्द राय के साथ उनकी वार्ताएँ दिव्य ज्ञान की उच्चतर अनुभूति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और उनके संवाद से ही एक पुस्तिका बनती है। तथापि हम यहाँ इस संवाद का सारांश दे रहे हैं :

महाप्रभु तथा रामानन्द राय के बीच वार्तालाप

यद्यपि श्री रामानन्द राय बाह्य रूप से सामाजिक स्तर पर ब्राह्मण से निम्न जाति के थे, किन्तु वे स्वरूपसिद्ध व्यक्ति थे। वे संन्यासी नहीं थे, और इसके अतिरिक्त वे राज्य के उच्च प्रशासनाधिकारी थे। फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनमें दिव्य ज्ञान की उच्चकोटि की अनुभूति होने के कारण उन्हें मुक्तात्मा के रूप में स्वीकार किया। इसी प्रकार महाप्रभु ने श्रील हरिदास ठाकुर को भी एक निष्ठापूर्ण भक्त के रूप में स्वीकार किया, जो मुसलमान परिवार से आते थे। इसके अतिरिक्त महाप्रभु के अन्य अनेक महान् भक्त हुए हैं, जो विभिन्न सम्प्रदायों तथा जातियों से थे। महाप्रभु की एकमात्र कसौटी होती थी, किसी व्यक्ति विशेष की भक्तिमय सेवा का स्तर। वे मनुष्य की बाह्य वेशभूषा की

परवाह नहीं करते थे, उन्हें तो केवल आन्तरिक आत्मा तथा उसके कार्यकलापों से सरोकार रहता था। अतएव भगवान् के सारे धर्म-प्रचार सम्बन्धी कार्यकलापों को आध्यात्मिक स्तर पर समझना होगा। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय या *भागवत् धर्म* सम्प्रदाय को संसारी कार्यों, समाजविज्ञान, राजनीति, आर्थिक विकास या जीवन के अन्य किसी क्षेत्र से कुछ भी लेना-देना नहीं है। *श्रीमद्भागवत* विशुद्ध रूप से आत्मा की दिव्य प्रेरणा है।

जब वे गोदावरी के तट पर श्री रामानन्द राय से मिले, तो महाप्रभु ने हिन्दुओं के द्वारा अपनाए जाने वाले *वर्णाश्रम-धर्म* की चर्चा की। श्रील रामानन्द राय ने कहा कि *वर्णाश्रम-धर्म* अर्थात् चार जातियाँ तथा चार आश्रम के नियमों का पालन करने से हर व्यक्ति दिव्य की अनुभूति कर सकता है। लेकिन महाप्रभु के मत से *वर्णाश्रम-धर्म* की प्रणाली ऊपरी और छिछोरी है और सर्वोच्च आध्यात्मिक अनुभूति से इसका बहुत कम सम्बन्ध है। जीवन की सर्वोच्च सिद्धि भौतिक आसक्ति से विरक्त होना और तदनुरूप भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति की अनुभूति करना है। जो जीव इस मार्ग पर आगे बढ़ता है, उसे भगवान् पहचान लेते हैं। अत: भक्तिमय सेवा ही समस्त ज्ञान के अनुशीलन की पराकाष्ठा है। जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण समस्त पतितात्माओं के उद्धार के लिए प्रकट हुए थे, तब उन्होंने सारे जीवों के उद्धार के लिए निम्नलिखित उपदेश दिया था, "जिन भगवान् से सारे जीव उद्भूत हैं, उनकी पूजा उन्हें अपने सभी कार्यों के द्वारा करनी चाहिए, क्योंकि हम जो कुछ भी देख रहे हैं, वह उनकी ही शक्ति का विस्तार है। यही वास्तविक सिद्धि का मार्ग है और भूतकाल तथा वर्तमान के समस्त प्रामाणिक आचार्यों द्वारा इसको मान्यता दी गई है।" *वर्णाश्रम* प्रणाली बहुत कुछ नैतिक एवं आचार सम्बन्धी

नियमों पर आधारित है। इस प्रकार दिव्यता की अनुभूति बहुत कम हो पाती है। अत: श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसे छिछोरी कहकर अस्वीकार कर दिया और रामानन्द राय से कहा कि वे इस विषय में आगे कहें।

सर्वोच्च पूर्णता की ओर ले जाने वाले सोपान

तब श्री रामानन्द राय ने सकाम कर्मों को भगवान् को अर्पित करने का सुझाव रखा। इस प्रसंग में *भगवद्गीता* (९.२७) का उपदेश है, "तुम जो कुछ करो, जो कुछ खाओ तथा दान करो और जो भी तपस्या करो, वह केवल मुझे ही अर्पित करो।" कर्मयोगी द्वारा यह समर्पण बताता है कि भगवान् वर्णाश्रम प्रणाली की निराकार धारणा से एक सीढ़ी ऊपर है, लेकिन तो भी इस प्रकार जीव तथा भगवान् का सम्बन्ध स्पष्ट नहीं हो पाता। अतएव महाप्रभु ने इस प्रस्ताव को भी अमान्य कर दिया और रामानन्द राय से आगे बोलने को कहा।

तब रामानन्द राय ने सुझाव दिया कि *वर्णाश्रम-धर्म* का परित्याग करके भक्तिमय सेवा स्वीकार करनी चाहिए। महाप्रभु ने इस सुझाव का भी अनुमोदन नहीं किया, क्योंकि मनुष्य को सहसा अपना पद नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि इससे वांछित फल नहीं मिलेगा।

राय ने आगे सुझाया कि भौतिक धारणा से मुक्त आध्यात्मिक अनुभूति की प्राप्ति जीव के लिए सर्वोच्च उपलब्धि है। महाप्रभु ने इस सुझाव को भी अस्वीकार कर दिया, क्योंकि ऐसी आध्यात्मिक अनुभूति के नाम पर अनेक धूर्त व्यक्तियों ने बहुत सा बखेड़ा खड़ा कर रखा है, अतएव सहसा ऐसा कर पाना सम्भव नहीं है। तब राय ने कहा कि स्वरूपसिद्ध व्यक्तियों की निष्ठावान संगति तथा भगवान्

की लीलाओं के दिव्य सन्देश का विनीतभाव से श्रवण करना श्रेष्ठ होगा। महाप्रभु ने इस सुझाव का स्वागत किया। यह सुझाव ब्रह्माजी के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए रखा गया था, क्योंकि ब्रह्माजी ने कहा है कि भगवान् *अजित* कहलाते हैं, अर्थात् वे जो न तो किसी के द्वारा जीते जा सकते हैं और न उन तक किसी की पहुँच हो सकती है। लेकिन ऐसे अजित भी एक अत्यन्त सरल तथा सुगम विधि से *जित* बन जाते हैं। सरल विधि यह है कि मनुष्य अपने आपको भगवान् कहने की उद्धत प्रवृत्ति त्याग दे। मनुष्य को अत्यन्त विनम्र एवं विनीत होना चाहिए और उस वाणी को कान लगाकर सुनते हुए शान्तिपूर्वक रहना चाहिए, जो *भागवत्-धर्म* के सन्देश तथा भगवान् और उनके भक्तों को गौरवान्वित करने के विषय में स्वरूपसिद्ध व्यक्ति द्वारा कही जा रही हो। महापुरुष की महिमा का गान करना जीवों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, लेकिन उन्होंने भगवान् की महिमा का गान करना नहीं सीखा है। भगवान् के स्वरूपसिद्ध भक्त की संगति में रहकर भगवान् के गुणगान करने से जीवन की सिद्धि प्राप्त हो सकती है। स्वरूपसिद्ध भक्त वह है, जो पूर्ण रूप से भगवान् की शरण में चला जाता है और जिसमें भौतिक सम्पन्नता के लिए कोई आसक्ति नहीं रहती। भौतिक सम्पन्नता तथा इन्द्रियभोग एवं उनकी उन्नति ये सब मानव समाज में अज्ञानता के कार्यकलाप हैं। ऐसे समाज में शान्ति तथा मैत्री भाव असम्भव है, जो ईश्वर तथा उनके भक्तों की संगति से दूर रहे। इसलिए यह आवश्यक है कि मनुष्य निष्ठापूर्वक शुद्ध भक्तों की संगति की तलाश करे और जीवन की किसी भी अवस्था में उनसे धैर्यपूर्वक तथा विनीत भाव से सुने। आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में किसी मनुष्य का उच्च या निम्न जीवन पद बाधक नहीं होता। लेकिन एक ही बात जो करनी है, वह है नियमित रूप से स्वरूपसिद्ध व्यक्ति

से सुनना। अध्यापक अपने उन पूर्ववर्ती आचार्यों के पदचिह्नों पर चलकर, जिन्होंने परम सत्य का साक्षात्कार किया है, वैदिक साहित्य के विषय में भाषण दे सकते हैं। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने आत्म-साक्षात्कार की इस सरल विधि की संस्तुति की है, जिसे सामान्यतया *भागवत-धर्म* कहा जाता है। इस कार्य के लिए *श्रीमद्भागवत* पूर्ण पथ-प्रदर्शक है।

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त भी भगवान् तथा श्री रामानन्द राय के बीच अन्य उच्चतर आध्यात्मिक वार्ताएँ हुईं, लेकिन हम उनके विषय में जानबूझकर यहाँ कुछ नहीं कहेंगे, क्योंकि रामानन्द राय के साथ हुई इन वार्ताओं को सुनने के लिए पहले स्वयं को भी आध्यात्मिक धरातल पर लाना होगा। हमने अन्य पुस्तक (*भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत*) में श्रील रामानन्द राय के साथ हुई वार्ता प्रस्तुत की है।

इस भेंट के अन्त में भगवान् ने श्री रामानन्द राय को सलाह दी कि वे नौकरी से अवकाश प्राप्त करके पुरी आ जाँय, जिससे दोनों साथ-साथ रहकर दिव्य सम्बन्धों का आस्वादन कर सकें। कुछ काल के बाद श्री रामानन्द राय सरकारी नौकरी से मुक्त हो गये और जब उन्होंने राजा से पेंशन प्राप्त कर ली, तो वे पुरी-स्थित अपने निवास स्थान पर लौट आये, जहाँ पर वे भगवान् के सबसे विश्वस्त भक्तों में से एक बने। पुरी में एक अन्य महाशय भी थे, जिनका नाम शिखि माहिति था। वे भी रामानन्द की ही भाँति अत्यन्त विश्वासपात्र थे। महाप्रभु पुरी में तीन या चार संगियों के साथ आध्यात्मिक विषयों पर गुह्य बातें किया करते थे और इस तरह उन्होंने आध्यात्मिक समाधि में अठारह वर्ष बिता दिये। उनकी बातें उनके निजी सचिव, श्री दामोदर गोस्वामी द्वारा लिखी जाती रहीं, जो उनके चार घनिष्ठतम

भक्तों में से एक थे।

महाप्रभु ने भारत के सारे दक्षिणी भाग की विस्तृत यात्रा की। महाराष्ट्र के महान् सन्त तुकाराम को भी महाप्रभु ने दीक्षा दी। सन्त तुकाराम ने महाप्रभु से दीक्षा ग्रहण करने के बाद सम्पूर्ण महाराष्ट्र प्रदेश को संकीर्तन आन्दोलन से आप्लावित कर दिया, जिसका दिव्य प्रवाह आज भी महान् भारतीय प्रायद्वीप के दक्षिण-पश्चिम भाग में चालू है।

महाप्रभु ने दक्षिण भारत से दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथ खोज निकाले। ये हैं *ब्रह्म-संहिता* तथा *कृष्ण-कर्णामृत*। ये दोनों ग्रंथ भक्ति मार्ग के हर व्यक्ति के लिए प्रामाणिक हैं। महाप्रभु दक्षिण भारत का भ्रमण करने के बाद पुन: पुरी लौट आये।

महाप्रभु का पुरी में वापस आना

महाप्रभु के पुरी लौटने पर उनके समस्त उत्सुक भक्तों को मानो जीवनदान मिल गया और महाप्रभु वहाँ अपनी दिव्य अनुभूति की लीलाएँ करते रहे। इस अवधि की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी महाप्रभु द्वारा राजा प्रतापरुद्र को आकर मिलने की अनुमति देना। राजा प्रतापरुद्र भगवान् के महान् भक्त थे। वे अपनी गणना भगवान् के उन भक्तों में करते थे, जिनका काम मन्दिर की साफसफाई करना था। राजा का यह विनयशील स्वभाव श्री चैतन्य महाप्रभु को बहुत भा गया। राजा ने भट्टाचार्य तथा राय दोनों से अनुरोध किया कि वे महाप्रभु से उनकी भेंट कराने की व्यवस्था करें, लेकिन जब उनके दो सर्वोच्च भक्त सार्वभौम भट्टाचार्य तथा रामानन्द राय ने उनकी सिफारिश की, तो उन्होंने इस अनुरोध को सीधे अस्वीकार कर दिया। महाप्रभु का कहना था कि संन्यासी के लिए सांसारिक अर्थ-प्रिय

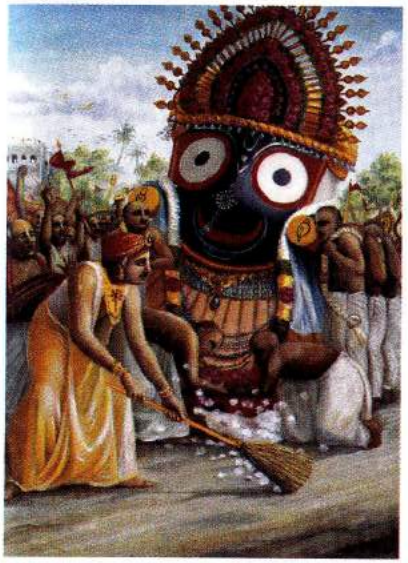

पुरुषों तथा स्त्रियों के घनिष्ठ सम्पर्क में आना खतरनाक है। महाप्रभु एक आदर्श संन्यासी थे। कोई भी स्त्री उन्हें नमस्कार करने के लिए भी उनके पास नहीं जा सकती थी। स्त्रियों को महाप्रभु के आसन से बहुत दूर स्थान दिया जाता था। आदर्श शिक्षक तथा आचार्य के रूप में वे संन्यासी के दैनिक कर्म के प्रति अत्यन्त कठोर थे। दिव्य अवतार होने के अतिरिक्त महाप्रभु मनुष्य के रूप में आदर्श चरित्र वाले थे। अन्यों के प्रति भी उनका आचरण संदेह से परे होता था। आचार्य के रूप में वे अपने आचरण में वज्र से भी कठोर और गुलाब से भी मृदु थे। उनके पार्षदों में से एक, छोटे हरिदास ने एक युवती पर कुदृष्टि से देखने की भारी भूल की। परमात्मा होने के कारण महाप्रभु छोटे हरिदास के मन की कामवासना को ताड़ गये। उन्होंने तुरन्त ही उसे अपनी संगति से निकाल दिया और फिर कभी नहीं स्वीकार किया, यद्यपि हरिदास की इस भूल को क्षमा करने के लिए महाप्रभु से याचना की गई। बाद में छोटे हरिदास ने महाप्रभु से साथ छूटने के कारण आत्महत्या कर ली और इस आत्माहत्या का समाचार महाप्रभु को सुनाया गया। उस समय भी महाप्रभु उसका अपराध नहीं भूले थे और उन्होंने यही कहा कि उसे उचित दण्ड मिला है।

संन्यास तथा अनुशासन के सिद्धान्तों से महाप्रभु समझौता करना नहीं जानते थे, अत: यह जानते हुए भी कि राजा एक महान् भक्त है, उन्होंने राजा से भेंट करने से मना कर दिया, केवल इसीलिए कि राजा धन-सम्पत्ति से सम्बन्धित थे। इस उदाहरण द्वारा महाप्रभु एक अध्यात्मवादी के लिए समुचित आचरण पर बल देना चाहते थे। एक अध्यात्मवादी को स्त्रियों तथा धन से कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। उसे सदैव ही ऐसे घनिष्ठ सम्बन्धों से बचना चाहिए। फिर भी भक्तों की सुनीतियों के द्वारा राजा को महाप्रभु की कृपा प्राप्त हो सकी। इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान् का प्यारा भक्त कनिष्ठ (नवजिज्ञासु) के प्रति भगवान् की अपेक्षा अधिक उदार होता है। अतएव शुद्ध भक्त कभी भी अन्य शुद्ध भक्त के चरणों पर कोई अपराध नहीं करते। भगवान् के चरणकमलों के प्रति किया गया अपराध कभी-कभी दयालु भगवान् के द्वारा क्षमा कर दिया जाता है, लेकिन भक्त के चरणों में किया गया अपराध उस व्यक्ति के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होता है, जो भक्ति के मार्ग पर वास्तव में अग्रसर होना चाहता है।

जब तक महाप्रभु पुरी में रहे, उनके हजारों भक्त भगवान् जगन्नाथ की रथयात्रा के समय उनका दर्शन करने आते थे। रथयात्रा के समय गुण्डिचा मन्दिर की सफाई स्वयं महाप्रभु के निरीक्षण में होती, क्योंकि यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य होता। पुरी में महाप्रभु का सामूहिक संकीर्तन आन्दोलन जनसमूह के लिए अद्वितीय प्रदर्शन होता। जनता के मन को आध्यात्मिक अनुभूति की ओर मोड़ने का यही तरीका था। महाप्रभु ने इस सामूहिक संकीर्तन प्रणाली का प्रवर्तन किया। समस्त देशों के नेता इस आध्यात्मिक आन्दोलन का लाभ जनता में शान्ति तथा एक दूसरे के प्रति मैत्रीभाव बनाये रखने के लिए उठा सकते हैं।

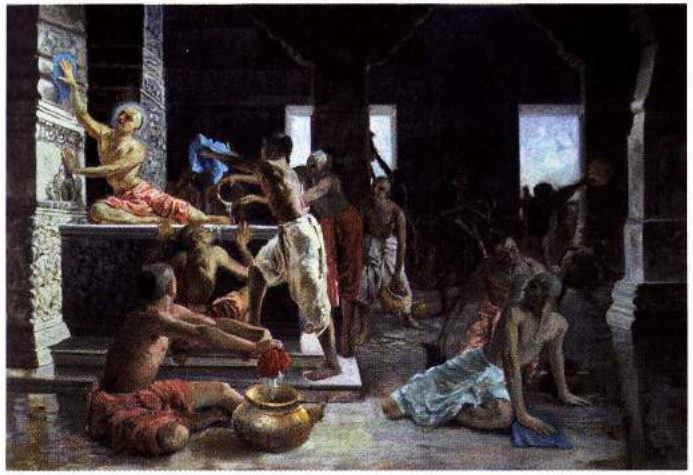

अब तो सारे विश्व में वर्तमान मानव समाज की यही माँग है।

महाप्रभु की वृन्दावन की यात्रा

कुछ काल के पश्चात् महाप्रभु उत्तर भारत की यात्रा पर चल पड़े और उन्होंने वृन्दावन तथा निकटवर्ती स्थानों को देखने का निश्चय किया। जब वे झारखंड (मध्य भारत) के जंगल से होकर गुजरे, तो सारे जंगली पशु उनके संकीर्तन आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। सारे जंगली बाघ, हाथी, भालू तथा हिरन महाप्रभु के साथ हो लेते और महाप्रभु उनके साथ संकीर्तन करते। इससे उन्होंने सिद्ध कर दिया कि संकीर्तन आन्दोलन के प्रसार से (भगवन्नाम के महिमागान तथा सामूहिक कीर्तन से) जंगली पशु तक शान्ति और मैत्री से रह सकते हैं, तो मनुष्यों के विषय में कहना ही क्या, क्योंकि वे सभ्य हैं। विश्व का कोई भी मनुष्य संकीर्तन आन्दोलन में सम्मिलित होने से इनकार

नहीं करेगा। न ही महाप्रभु का संकीर्तन आन्दोलन किसी जाति, नस्ल, रंग या योनि तक सीमित है। यहाँ उनके महान् उद्देश्य का प्रत्यक्ष साक्ष्य है कि उन्होंने अपने इस महान् आन्दोलन में जंगली पशुओं तक को भाग लेने दिया।

वृन्दावन से लौटते हुए वे पहले प्रयाग आये, जहाँ वे रूप गोस्वामी से मिले जिनके साथ उनका छोटा भाई अनुपम भी था। फिर वे बनारस पहुँचे। वे दो मास तक श्री सनातन गोस्वामी को दिव्य विज्ञान की शिक्षा देते रहे। सनातन गोस्वामी को दी गई शिक्षा अपने आप में लम्बी कहानी है, अत: उसका पूरा वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है। उसकी मुख्य बातें नीचे दी जा रही हैं :

भगवान् की बनारस की यात्रा

सनातन गोस्वामी (जो पहले साकर मल्लिक नाम से जाने जाते

थे) नवाब हुसैन शाह के शासन काल में बंगाल सरकार के मन्त्री पद पर थे। उन्होंने महाप्रभु के साथ रहने की इच्छा से नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लिया। जब महाप्रभु वृन्दावन से लौटकर वाराणसी पहुँचे, तो वे श्री तपन मिश्र तथा चन्द्रशेखर के अतिथि बने और एक मराठी ब्राह्मण उनकी सेवा में था। उस समय वाराणसी की अगुवाई मायावाद सम्प्रदाय के एक महान् संन्यासी श्रीपाद प्रकाशानन्द सरस्वती कर रहे थे। जब महाप्रभु वाराणसी में थे, तब उनके सामूहिक संकीर्तन आन्दोलन के कारण जनता उनके प्रति अधिक आकृष्ट हो गई। वे जहाँ भी जाते, विशेष रूप से विश्वनाथ मन्दिर में, तो हजारों तीर्थयात्री उनके पीछे हो लेते। कुछ लोग उनके शारीरिक स्वरूप से आकर्षित थे, तो कुछ भगवान् की महिमा में गाये जाने वाले उनके सुरीले गीतों से।

मायावादी संन्यासी अपने आपको नारायण कहते हैं। आज भी वाराणसी अनेक मायावादी संन्यासियों से भरी पड़ी है। जिन कतिपय लोगों ने महाप्रभु को उनकी संकीर्तन मंडली के साथ देखा था, वे उन्हें सचुमच नारायण मानते थे। यह समाचार महान् संन्यासी प्रकाशानन्द को भी मिला।

भारतवर्ष में *मायावाद* तथा *भागवत* सम्प्रदाय में सदा से एक प्रकार की आध्यात्मिक होड़ लगी रहती है, अत: जब महाप्रभु का समाचार प्रकाशानन्द को मिला, तो वे जान गये कि महाप्रभु वैष्णव संन्यासी हैं। अतएव जो लोग इस समाचार को लाये थे, उनके समक्ष उन्होंने महाप्रभु को कुछ महत्त्व नहीं दिया। उन्होंने महाप्रभु के कार्यकलापों की निन्दा की, क्योंकि वे संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार कर रहे थे, जो इनके मत के अनुसार मात्र धार्मिक आवेश था। प्रकाशानन्द वेदान्त के उद्भट विद्वान थे, अतएव उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा कि वे संकीर्तन के चक्कर में न पड़कर वेदान्त

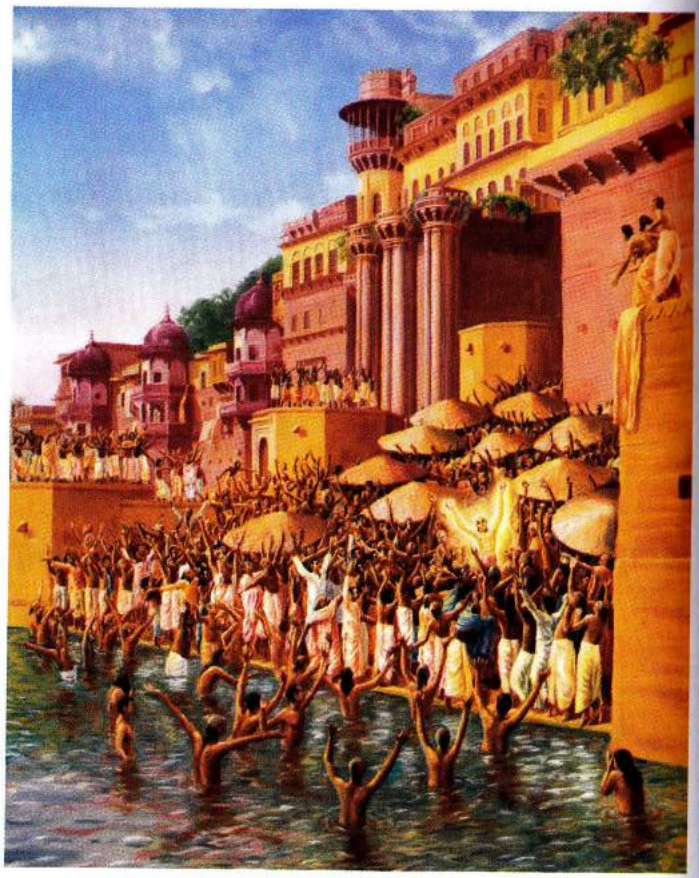

की ओर ध्यान दें।

एक भक्त-ब्राह्मण जो महाप्रभु का भक्त बन चुका था, उसको प्रकाशानन्द द्वारा की गई यह आलोचना अच्छी नहीं लगी, अतएव वह अपनी व्यथा प्रकट करने के लिए महाप्रभु के पास गया। उसने भगवान् को बताया कि जब उसने संन्यासी प्रकाशानन्द के समक्ष

महाप्रभु का नाम लिया, तो उसने महाप्रभु की तीव्र आलोचना की, यद्यपि उसने प्रकाशानन्द के मुख से कई बार चैतन्य नाम उच्चरित होते सुना था। वह ब्राह्मण इसीलिए चकित था कि संन्यासी प्रकाशानन्द कृष्ण शब्द का उच्चारण एक बार भी नहीं कर सका, यद्यपि उसने चैतन्य नाम का उच्चारण कई बार किया।

महाप्रभु ने हँसते हुए उस भक्त-ब्राह्मण को बताया कि मायावादी कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण क्यों नहीं कर सकते। "ये मायावादी कृष्ण के चरणकमलों में अपराधी हैं, भले ही ये सदैव ब्रह्म, आत्मा या चैतन्य आदि नामों का उच्चारण करें। और चूँकि वे कृष्ण के चरणकमलों में अपराधी हैं, अत: वे वास्तव में कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण नहीं कर सकते। कृष्ण का नाम तथा स्वयं भगवान् कृष्ण अभिन्न हैं। परम लोक में परम सत्य के नाम, रूप या व्यक्तित्व में कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि परम लोक में हर वस्तु दिव्य आनन्दमय होती है। भगवान् कृष्ण के लिए उनके शरीर तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं होता। इस प्रकार वे उस जीव से भिन्न हैं, जो अपने बाह्य शरीर से सदा भिन्न होता है। कृष्ण की दिव्य स्थिति के कारण सामान्य व्यक्ति के लिए भगवान् कृष्ण, उनके पवित्र नाम तथा यश इत्यादि को वास्तविक रूप में जानना बहुत कठिन है। उनके नाम, यश, रूप, लीलाएँ—ये सभी एक ही दिव्य स्वरूप हैं और इन्हें भौतिक इन्द्रियों के व्यायाम द्वारा नहीं जाना जा सकता।

"भगवान् की लीलाओं का दिव्य सम्बन्ध ब्रह्म की अनुभूति या परमेश्वर से तदाकार होने की अनुभूति से भी अधिक आनन्द का स्रोत है। यदि ऐसा न होता, तो जो पहले से ब्रह्म के दिव्य आनन्द में स्थित हैं, वे भगवान् की लीलाओं के दिव्य आनन्द के द्वारा आकृष्ट न हुए होते।"

महाप्रभु की प्रकाशानन्द सरस्वती से भेंट

इसके बाद महाप्रभु के भक्तों ने एक बहुत ही बड़ी सभा का आयोजन किया, जिसमें सभी संन्यासीओं को आमंत्रित किया गया और महाप्रभु तथा प्रकाशानन्द सरस्वती भी इसमें सम्मिलित थे। इस सभा में दोनों विद्वानों (महाप्रभु तथा प्रकाशानन्द) के बीच संकीर्तन आन्दोलन के आध्यात्मिक महत्त्व पर लम्बा शास्त्रार्थ चला, जिसका सांराश नीचे दिया जा रहा है :

महान् मायावादी संन्यासी प्रकाशानन्द ने महाप्रभु से पूछा कि आप *वेदान्त-सूत्र* के अध्ययन की अपेक्षा संकीर्तन आन्दोलन को प्राथमिकता क्यों देते हैं? प्रकाशानन्द ने कहा कि संन्यासी का धर्म *वेदान्त-सूत्र* का अध्ययन करना है। तो फिर भगवान् संकीर्तन में क्यों लगे हुए हैं?

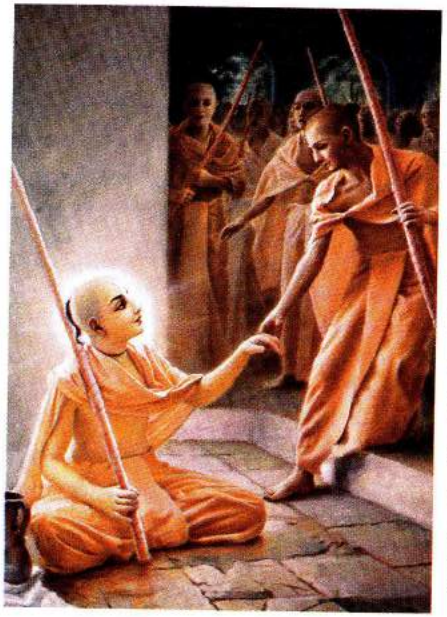

ऐसा पूछे जाने पर महाप्रभु ने इसका उत्तर अत्यन्त विनीत भाव से दिया, "वेदान्त का अध्ययन करने के बदले मैं संकीर्तन आन्दोलन में इसीलिए लगा हूँ, क्योंकि मैं महामूर्ख हूँ।" इस प्रकार महाप्रभु ने अपने आपको इस

युग के उन असंख्य मूर्खों में से एक बताया, जो वेदान्त दर्शन का अध्ययन कर सकने में सर्वथा अक्षम हैं। मूर्खों द्वारा वेदान्त के अध्ययन से समाज में इतनी अफरा-तफरी मची हुई है। महाप्रभु ने आगे कहा : "चूँकि मैं महामूर्ख हूँ, अतएव मेरे गुरु ने मुझे मना किया कि मैं वेदान्त दर्शन के साथ खिलवाड़ न करूँ। उन्होंने कहा कि अच्छा यह होगा कि मैं भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करूं, क्योंकि इससे मैं भव-बन्धन से मुक्त हो सकुंगा।"

भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना वही एकमात्र मार्ग है

"इस कलियुग में भगवान् के पवित्र नाम के उच्चारण द्वारा भगवान् की महिमा के गायन के अतिरिक्त अन्य कोई धर्म नहीं है। यही समस्त प्रामाणिक शास्त्रों का आदेश है। मेरे गुरु ने तो मुझे एक ही श्लोक (जो *बृहन्नारदीय पुराण* का है) बताया है :

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

"अत: मैं अपने गुरु के आदेश से हरि के पवित्र नाम का कीर्तन करता हूँ और अब मैं इस पवित्र नाम के पीछे पागल रहता हूँ। जब भी मैं पवित्र नाम का उच्चारण करता हूँ, तो मैं अपने आपको पूरी तरह भूल जाता हूँ, कभी हँसता हूँ, कभी रोता हूँ तो कभी पागल की तरह नाचता हूँ। मैंने सोचा कि मैं इस कीर्तन-विधि से सचमुच ही पागल बन गया हूँ, तो मैंने अपने गुरु से इसके विषय में पूछा। उन्होंने मुझे बताया कि यही पवित्र नाम के कीर्तन का वास्तविक प्रभाव है, जिससे दिव्य भाव उत्पन्न होता है जो अत्यन्त दुर्लभ है। यह उस ईश-प्रेम का

लक्षण है, जो जीवन का चरम लक्ष्य है। ईश-प्रेम मुक्ति से परे है, अतएव यह आत्म-साक्षात्कार की पाँचवीं अवस्था कहलाता है और यह मुक्ति-अवस्था से ऊपर है। कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन से मनुष्य को ईश-प्रेम की अवस्था प्राप्त होती है और यह अच्छा हुआ कि सौभाग्यवश मुझे यह आशीर्वाद प्राप्त हो गया।"

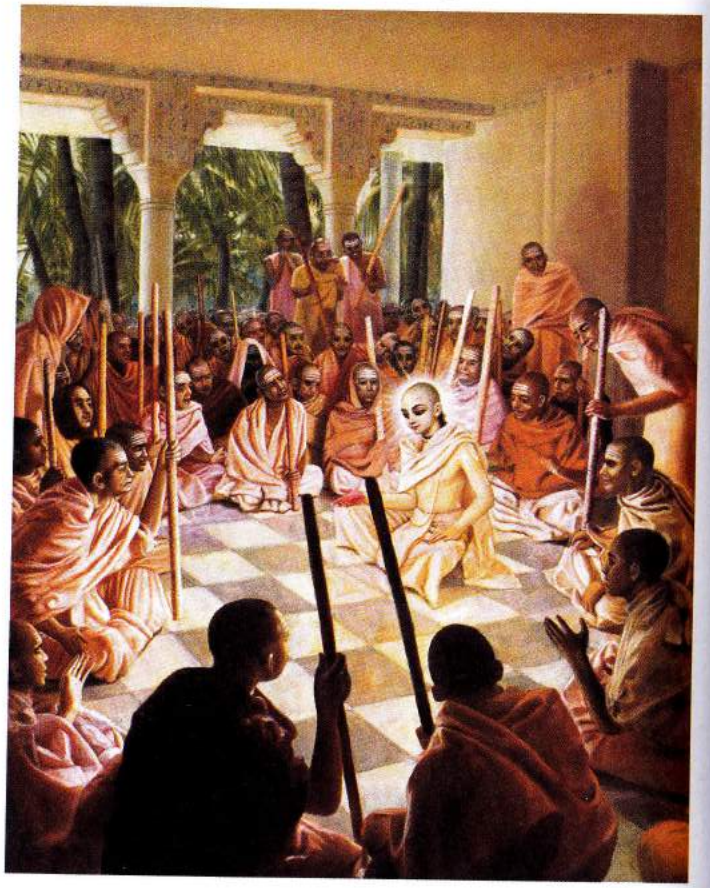

महाप्रभु से यह कथन सुनकर मायावादी संन्यासी ने भगवान् से पूछा कि पवित्र नाम के कीर्तन के साथ-साथ वेदान्त का अध्ययन करने में कौन-सी हानि है? प्रकाशानन्द सरस्वती यह भलीभाँति जानते थे कि महाप्रभु पहले निमाई पण्डित के नाम से नवद्वीप के एक महान् विद्वान के रूप में विख्यात थे, अतएव अपने आप को मूर्ख कहने के पीछे निश्चित रूप से उनका कोई हेतु था। संन्यासी से यह प्रश्न सुनकर महाप्रभु हँसे और बोले, "प्रिय महाशय, यदि आप अन्यथा न लें, तो मैं आपके प्रश्न का उत्तर दूँ।"

वहाँ पर उपस्थित सारे संन्यासी महाप्रभु के इस विमल आचरण से अत्यन्त प्रमुदित हुए और वे सभी एक स्वर से बोले कि चाहे महाप्रभु जो कुछ भी उत्तर दें, उससे वे बुरा नहीं मानेंगे। तब महाप्रभु इस प्रकार बोले :

"*वेदान्त-सूत्र* दिव्य शब्दों से अर्थात् दिव्य परमेश्वर द्वारा उच्चरित ध्वनियों से युक्त है। अतएव वेदान्त में त्रुटि, भ्रम, धोखा या अक्षमता जैसी मानवीय दुर्बलताएँ नहीं हो सकतीं। उपनिषदों का सन्देश *वेदान्त-सूत्र* में अभिव्यक्त किया गया है, अतएव उसमें जो कुछ भी प्रत्यक्ष रूप से कहा गया है, वह निश्चित रूप से महिमामंडित है। शंकराचार्य ने जो भी व्याख्याएँ की हैं, उनका सूत्र से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, अतएव ऐसी टीका से सब कुछ बिगड़ जाता है।

"ब्रह्म शब्द सर्वोच्च का सूचक है, जो दिव्य ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं और सर्वश्रेष्ठ हैं। ब्रह्म अन्ततः भगवान् के व्यक्तित्व का सूचक है, और वे अप्रत्यक्ष व्याख्याओं से प्रच्छन्न हो जाते हैं और निराकार रूप में स्थापित किये जाते हैं। आध्यात्मिक जगत में जो कुछ भी है, जिसमें भगवान् का रूप, शरीर, स्थान तथा सामग्री सम्मिलित है, दिव्य आनन्द से परिपूर्ण है। ये सभी शाश्वत रूप से प्रबुद्ध तथा आनन्दपूर्ण

हैं। यह आचार्य शंकर का दोष नहीं है कि उन्होंने वेदान्त की ऐसी व्याख्या की, लेकिन यदि कोई उसे अंगीकार करता है, तो समझिये कि उसका सर्वनाश हो गया। यदि कोई भगवान् के दिव्य शरीर को भौतिक मानता है, तो वह निश्चित रूप से सबसे बड़ा अपराध करता है।"

इस प्रकार महाप्रभु इस संन्यासी से लगभग उसी स्वर में बोले, जिस तरह वे पुरी के भट्टाचार्य से बोले थे, और अपने सशक्त तर्कों के आधार पर उन्होंने *वेदान्त-सूत्र* की मायावादी व्याख्याओं का खण्डन किया। वहाँ पर उपस्थित समस्त संन्यासियों ने स्वीकार किया कि महाप्रभु साक्षात् वेद तथा परमेश्वर हैं। अत: सारे संन्यासी भक्ति-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये, सबों ने भगवान् श्रीकृष्ण के पवित्र नाम को स्वीकार किया और सबों ने महाप्रभु के साथ उन्हें बीच में रखकर भोजन किया। संन्यासियों के इस सम्प्रदाय-परिवर्तन से वाराणसी में महाप्रभु की लोकप्रियता बढ़ गई और हजारों लोग महाप्रभु का दर्शन करने के लिए एकत्र होने लगे। इस तरह महाप्रभु ने *श्रीमद्भागवत धर्म* की प्रारम्भिक महत्ता स्थापित की और उन्होंने आत्म-साक्षात्कार की अन्य समस्त पद्धतियों को परास्त कर दिया। तब से वाराणसी का प्रत्येक व्यक्ति दिव्य संकीर्तन आन्दोलन से अभिभूत होने लगा।

सनातन गोस्वामी को महाप्रभु द्वारा शिक्षा

जब महाप्रभु वाराणसी में अपना डेरा डाले हुए थे, तब सनातन गोस्वामी भी अपने पद से अवकाश ग्रहण करके वहाँ आ गये। वे नवाब हुसैन शाह के शासन के अन्तर्गत बंगाल सरकार के भूतपूर्व मन्त्री थे। चूँकि नवाब उन्हें अवकाश नहीं देना चाहता था, अतएव

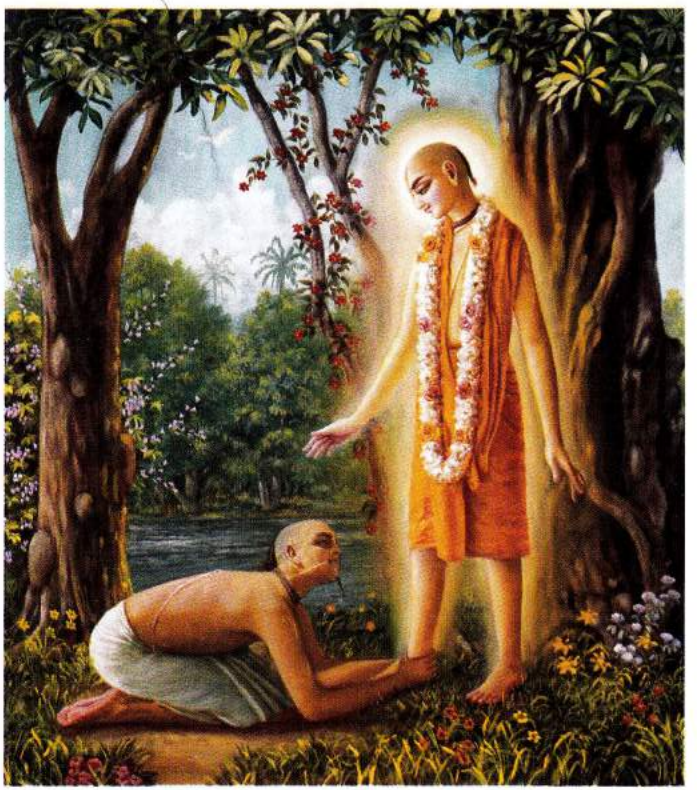

उन्हें वहाँ से छूटकर आने में कुछ कठिनाई हुई। तो भी वे वाराणसी आये और भगवान् ने उन्हें भक्ति के सिद्धान्तों की शिक्षा दी। उन्होंने उन्हें इन बातों की शिक्षा दी—जीव की स्वरूप स्थिति, भौतिक दशाओं में उसके बन्धन के कारण, भगवान् से उसके सनातन सम्बन्ध, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य स्थिति, विभिन्न पूर्णांश अवतारों में उनका विस्तार, ब्रह्माण्ड के विभिन्न भागों पर उनका नियन्त्रण, उनके दिव्य धाम की प्रकृति, भक्ति-कार्य, उनके विकास की विभिन्न

अवस्थाएँ, आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करने की क्रमिक अवस्थाओं के विधि-विधान, विभिन्न युगों में विभिन्न अवतारों के लक्षण तथा शास्त्रों के अनुसार उनकी पहचान करना इत्यादि।

श्री चैतन्य चरितामृत में सनातन गोस्वामी को महाप्रभु द्वारा दिये गये उपदेशों से सम्बन्धित एक पूरा बृहद् अध्याय है। उन समस्त उपदेशों की विशद व्याख्या के लिए पूरी पुस्तक लिखनी पड़ेगी। इनका विस्तृत वर्णन हमारी पुस्तक *भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत* में दिया हुआ है।

महाप्रभु की मथुरा तथा वृन्दावन की यात्रा

मथुरा में महाप्रभु ने समस्त महत्त्वपूर्ण स्थलों की मुलाकात ली। फिर वे वृन्दावन पहुँचे। भगवान् चैतन्य उच्च ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे और इसके अलावा संन्यासी होने के कारण वे समस्त वर्णों तथा आश्रमों के गुरु थे। लेकिन वे समस्त जाति के वैष्णवों से भोजन ग्रहण करते थे। मथुरा में सनोड़िया ब्राह्मण समाज में निम्न स्तर पर माने जाते हैं, लेकिन महाप्रभु ने ऐसे ब्राह्मण परिवार से भी भोजन स्वीकार किया, क्योंकि यह आतिथेय संयोगवश माधवेन्द्र पुरी के वंश का शिष्य भी था।

वृन्दावन में महाप्रभु ने चौबीस महत्त्वपूर्ण स्थानों एवं घाटों में स्नान किया। उन्होंने बारहों महत्त्वपूर्ण वनों की यात्रा भी की। इन वनों की सारी गायों तथा पक्षियों ने उनका स्वागत किया, मानो वे उनके अत्यन्त पुराने मित्र हों। महाप्रभु उन वनों के सारे वृक्षों का आलिगंन भी करते जाते थे और ऐसा करते हुए उनमें दिव्य आनन्द के लक्षण प्रकट हो जाते थे। कभी वे मूर्छित हो जाते, किन्तु कृष्ण के पवित्र

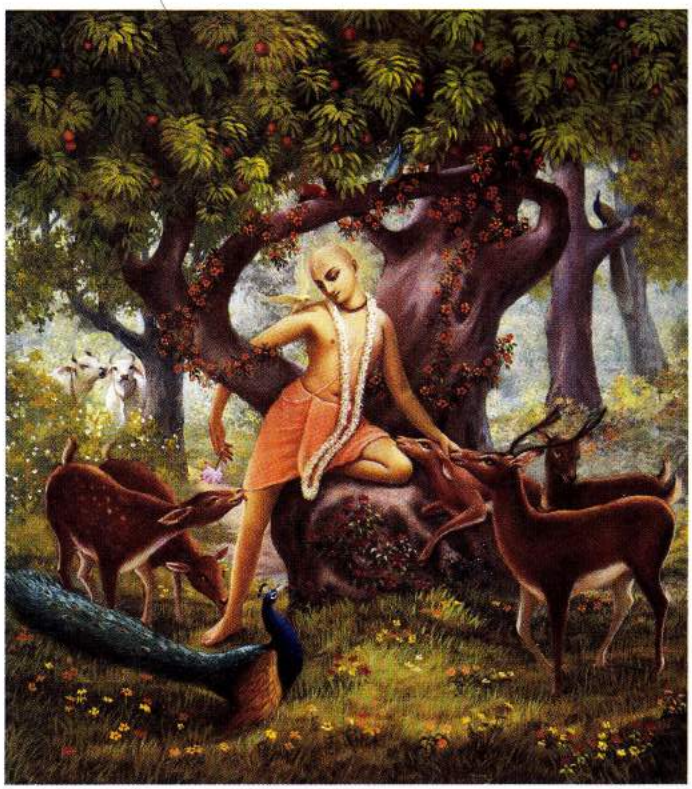

नाम का कीर्तन करने पर उन्हें पुन: चेत आ जाता। वृन्दावन के वन के भीतर यात्रा के समय उनके शरीर में जो लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे थे, वे अद्वितीय तथा अवर्णनीय थे और हमने केवल उनकी रूपरेखा ही दी है।

महाप्रभु ने वृन्दावन के जिन महत्त्वपूर्ण स्थलों का दर्शन किया, उनमें से कुछ थे—काम्यवन, आदीश्वर, पावन-सरोवर, खदिरवन, शेषशायी, खेलतीर्थ, भाण्डीरवन, भद्रवन, श्रीवन, लौहवन, महावन,

गोकुल, कालियह्रद, द्वादशादित्य, केशीतीर्थ इत्यादि। जब उन्होंने उस स्थान को देखा, जहाँ रासनृत्य हुआ था, तो वे तुरन्त समाधिस्थ हो गये। जब तक वे वृन्दावन में रहे, उन्होंने अक्रूर घाट को अपना निवासस्थान बनाये रखा।

महाप्रभु प्रयाग जाते हैं

महाप्रभु के निजी सेवक कृष्णदास विप्र ने उन्हें वृन्दावन से माघ मेला के अवसर पर स्नान करने के लिए प्रयाग जाने के लिए प्रेरित किया। महाप्रभु ने यह प्रस्ताव मान लिया और वे प्रयाग के लिए रवाना हो गये। रास्ते में उन्हें कुछ पठान मिले, जिनमें से एक विद्वान मौलाना थे। महाप्रभु की इस मौलाना तथा उसके साथियों से कुछ बातें हुईं, तो उन्होंने मौलाना को विश्वास दिलाया कि कुरान में भी *भागवत-धर्म* तथा कृष्ण का वर्णन है। फलस्वरूप सारे पठानो ने उनके भक्ति-सम्प्रदाय को स्वीकार कर लिया।

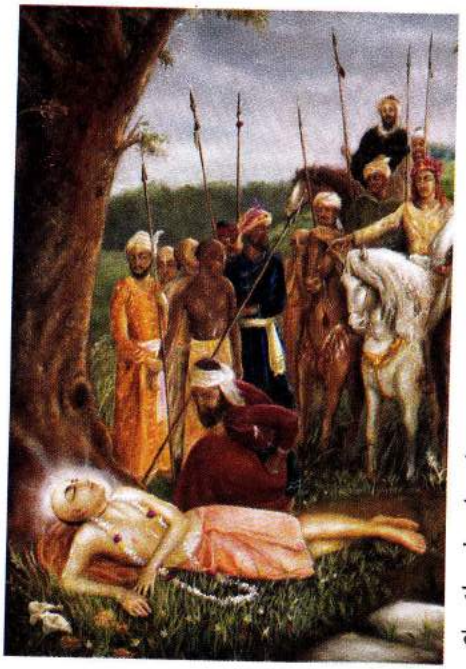

जब वे प्रयाग आ गये, तो श्रील रूप गोस्वामी तथा उनके सबसे छोटे भाई उनसे बिन्दु-माधव मन्दिर के निकट मिले। इस बार प्रयाग के निवासियों ने महाप्रभु का पहले से अधिक आदरपूर्ण स्वागत किया। प्रयाग के उस पार स्थित आड़ैल गाँव के निवासी वल्लभ भट्ट अपने गाँव में उनका स्वागत करने वाले थे, लेकिन वहाँ जाते समय महाप्रभु यमुना नदी में कूद पड़े। बड़ी ही कठिनाई से उन्हें मूर्छित अवस्था में पकड़कर बचाया गया। अन्त में वे वल्लभ भट्ट के स्थान पर गये। वल्लभ भट्ट महाप्रभु के मुख्य प्रशंसकों में से एक थे, लेकिन बाद में उन्होंने अपना दल बना लिया जिसका नाम वल्लभ सम्प्रदाय पड़ा।

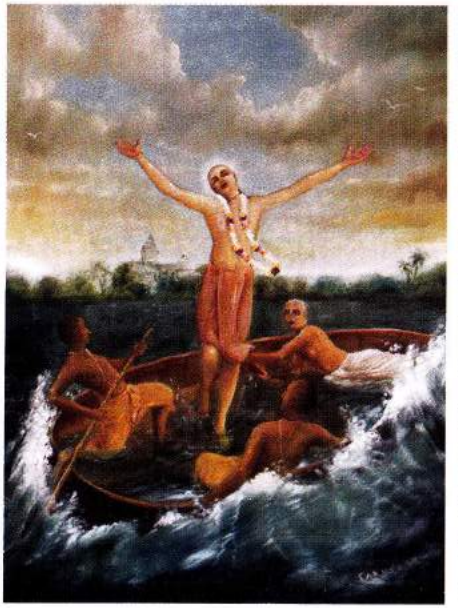

महाप्रभु द्वारा रूप गोस्वामी को उपदेश

प्रयाग में दशाश्वमेध घाट पर महाप्रभु ने रूप गोस्वामी को लगातार दस दिनों तक भगवान् की भक्ति का ज्ञान दिया। उन्होंने गोस्वामी को प्राणियों की ८४,००,००० योनियों के विभागों की शिक्षा दी। फिर

उन्होंने मनुष्य योनि के विषय में शिक्षा दी। उन्होंने मनुष्यों में से वैदिक सिद्धान्तों के अनुयायियों के विषय में, फिर इनमें से सकाम कर्मियों, फिर इनमें से भी ज्ञानियों तथा ज्ञानियों में से मुक्तात्माओं के विषय में बातें बताईं। उन्होंने बताया कि कुछ ही ऐसे लोग हैं, जो वास्तव में भगवान् श्रीकृष्ण के शुद्ध भक्त हैं।

श्रील रूप गोस्वामी सनातन गोस्वामी के छोटे भाई थे। जब वे सेवा से निवृत्त हुए, तो वे अपने साथ दो नाव भरकर सोने के सिक्के लाये थे—अर्थात् वे अपनी नौकरी से संचित कई लाख रुपये लाये थे। उन्होंने गृह त्यागकर भगवान् चैतन्य महाप्रभु के पास जाने के पूर्व अपनी सम्पत्ति इस प्रकार बाँट दी—पचास प्रतिशत भगवान् तथा उनके भक्तों की सेवा में, पच्चीस प्रतिशत सम्बन्धियों में तथा पच्चीस प्रतिशत आपातकालीन निजी आवश्यकता के लिए। इस प्रकार से उन्होंने समस्त गृहस्थों के लिए एक आदर्श स्थापित किया।

महाप्रभु ने गोस्वामी को भक्ति के विषय में शिक्षा देते समय भक्ति की तुलना एक लता से की और उपदेश दिया कि इस भक्ति-लता को शुद्ध भक्तों के प्रति किये गये अपराध रूपी मत्त हाथी से अत्यन्त सावधानी से बचाना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस लता की रक्षा इन्द्रियभोग की इच्छाओं से, अद्वैतवादी मुक्ति से तथा हठयोग प्रणाली की सिद्धि से भी करनी होगी। ये सब भक्ति-पथ के लिए हानिकारक हैं। इसी प्रकार जीवों के प्रति हिंसा, सांसारिक लाभ की इच्छा, सांसारिक सम्मान तथा सांसारिक यश भी भक्ति या *भागवत-धर्म* की उन्नति में बाधक हैं।

शुद्ध भक्तिमय सेवा को इन्द्रियतृप्ति की समस्त इच्छाओं, सकाम महत्त्वाकांक्षाओं तथा अद्वैतवादी ज्ञान के संवर्धन से मुक्त रखा जाना चाहिए। मनुष्य को सारी उपाधियों से मुक्त होना चाहिए और जब वह

दिव्य शुद्धता को प्राप्त कर लेता है, तब वह शुद्ध इन्द्रियों के द्वारा भगवान् की सेवा कर सकता है।

जब तक इन्द्रियभोग की या परमेश्वर से एकाकार होने की या योग-शक्तियों को प्राप्त करने की इच्छा रहती है, तब तक शुद्ध भक्तिमय सेवा की अवस्था प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

भक्ति दो प्रकार से सम्पन्न की जाती है—प्राथमिक अभ्यास द्वारा तथा स्वयंस्फूर्त भाव से। जब कोई स्वत:स्फूर्त भाव की दशा को प्राप्त कर लेता है, तो वह आध्यात्मिक अनुराग, अनुभूति, प्रेम तथा भक्तिमय जीवन की ऐसी अनेक उच्चतर अवस्थाओं द्वारा आगे भी प्रगति कर सकता है, जिनके लिए अंगरेजी भाषा में शब्द नहीं हैं। हमने भक्ति के विज्ञान को श्रील रूप गोस्वामी कृत *भक्ति-रसामृत-सिन्धु* के प्रमाण पर आधारित अपने ग्रन्थ *द नेक्टर ऑफ डिवोशन* में बताने का प्रयत्न किया है।

दिव्य भक्तिमय सेवा में आदान-प्रदान की पाँच अवस्थाएँ होती हैं :

१. भौतिक बन्धन से मुक्ति पाने के तुरन्त बाद आत्म-साक्षात्कार की अवस्था *शान्त* अवस्था अर्थात् तटस्थ अवस्था कहलाती है।

२. इसके पश्चात् भगवान् के आन्तरिक ऐश्वर्यों के दिव्य ज्ञान के विकास होने पर भक्त *दास्य* अवस्था में रत होता है।

३. दास्य अवस्था के आगे और विकास होने से भगवान् के साथ आदर के साथ का भ्रातृभाव उत्पन्न होता है, जिसके बाद मैत्री भाव समान स्तर का प्रकट होता है। ये दोनों अवस्थाएँ *सख्य* अवस्था अर्थात् मैत्रीभाव में की जानेवाली भक्तिमय सेवा कहलाती हैं।

४. इसके बाद *वात्सल्य* अवस्था आती है, जिसमें भगवान् के प्रति माता-पिता के जैसा प्रेमभाव उपजता है।

५. इसके बाद माधुर्य प्रेम की अवस्था आती है, जिसे ईश्वर-प्रेम की सर्वोच्च अवस्था कहते हैं—यद्यपि उपर्युक्त अवस्थाओं की गुणवत्ता में कोई अन्तर नहीं है। ईश्वर के प्रति युगल प्रेम की इस अन्तिम अवस्था *माधुर्य* अवस्था कहलाती है।

इस प्रकार उन्होंने रूप गोस्वामी को भक्ति विज्ञान की शिक्षा दी और उन्हें भगवान् की दिव्य लीलाओं से सम्बन्धित वृन्दावन के लुप्त स्थलों की खुदाई करने का कार्य-भार सौंपा। तत्पश्चात् महाप्रभु वाराणसी लौट गये और वहाँ सन्यासियों का उद्धार किया और रूप गोस्वामी के बड़े भाई को भी शिक्षा दी। इसकी चर्चा पहले हो चुकी है।

महाप्रभु का शिक्षाष्टक

महाप्रभु लिखित रूप में अपने उपदेशों के कोवल आठ श्लोक ही छोड़ गये, जो *शिक्षाष्टक* नाम से जाने जाते हैं। उनके दिव्य सम्प्रदाय का अन्य साहित्य उनके प्रधान अनुयायी, वृन्दावन के छह गोस्वामियों तथा उनके अनुयायियों द्वारा लिखा गया। चैतन्य-दर्शन का सम्प्रदाय अन्य किसी सम्प्रदाय से अधिक समृद्ध है और उसे आज का जीवित धर्म माना जाता है, जिसमें *विश्वधर्म* के रूप में फैलने की शक्ति है। हमें प्रसन्नता है कि भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज तथा उनके शिष्य जैसे कतिपय उत्साही साधुओं ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया है। हम उस दिन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा में हैं, जब भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित *भागवत-धर्म* या *प्रेम-धर्म* के आनन्ददायक दिन आएँगे।

महाप्रभु द्वारा लिखित आठ श्लोक इस प्रकार हैं :

१

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि-निर्वापणं
श्रेयः कैरवचन्द्रिका वितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम्॥ १॥

श्रीकृष्ण संकीर्तन की परम विजय हो, जो वर्षों से हृदय में संचित धूल का मार्जन करने वाला तथा बारम्बार होने वाले जन्म-मृत्यु रूप महादावाग्नि को बुझाने वाला है। यह संकीर्तन आन्दोलन सारी मानवता के लिए परम वरदान है, क्योंकि यह मंगलरूपी चन्द्रिका का वितरण करता है। यह समस्त दिव्य ज्ञानरूपी विद्या का जीवन है। यह दिव्य आनन्द के सागर की वृद्धि करने वाला है और जिसके लिए हम सदैव आतुर रहते हैं, उस अमृत का पूर्णरूप से आस्वादन करने में हमें समर्थ बनाता है।

२

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥ २॥

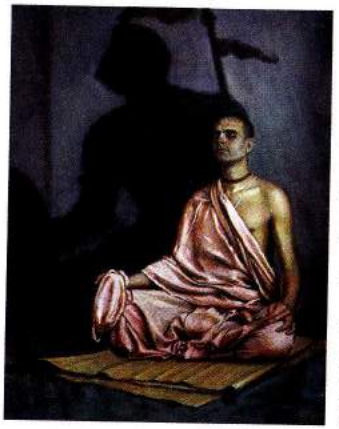

हे भगवान्! एकमात्र आपका पवित्र नाम ही जीवों का सब प्रकार से कल्याण करने वाला है, और इस प्रकार आपके कृष्ण, गोविन्द जैसे हजारों और लाखों नाम हैं। आपने इन दिव्य नामों में अपनी समस्त दिव्य शक्तियाँ भर दी हैं। इन नामों का उच्चारण करने के लिए कोई निश्चित और कठोर नियम भी नहीं हैं। हे प्रभो! आपने अपनी कृपा के कारण अपने पवित्र नामों के कीर्तन द्वारा हमें अत्यन्त सरलता से आपको प्राप्त करने में समर्थ बना दिया है, किन्तु मैं इतना अभागा हूँ कि आपके इन नामों में मुझे थोड़ा भी अनुराग नहीं है।

३

तृणादपि सुनीचेन
तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन
कीर्तनीयः सदा हरिः ॥ ३॥

व्यक्ति को पवित्र हरिनाम का कीर्तन विनम्र भाव से, स्वयं को मार्ग में पड़े हुए तृण से भी अधिक नीच मानकर करना चाहिए। मनुष्य को वृक्ष से भी अधिक सहनशील होना चाहिए तथा मिथ्या मान की भावना से रहित होकर दूसरों को आदर देने में तत्पर रहना चाहिए। ऐसी मानसिक अवस्था में मनुष्य भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन निरन्तर कर सकता है।

४

न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि॥ ४॥

हे सर्वसमर्थ जगदीश! मुझे धन एकत्र करने की कोई कामना नहीं है, न ही मैं सुन्दर स्त्रियों, अनुयायियों अथवा स-अलंकार कविता का ही इच्छुक हूँ। मुझे तो केवल जन्म-जन्मांतरों में आपकी अहैतुकी भक्ति ही चाहिए।

५

अयि नन्दतनुज किङ्करं
पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपङ्कज-
स्थित-धूलीसदृशं विचिन्तय॥ ५॥

हे नन्दतनुज (कृष्ण)! मैं तो आपका सनातन सेवक हूँ, किन्तु किसी न किसी कारण से मैं जन्म-मृत्युरूपी सागर में गिर पड़ा हूँ।

कृपया इस भवसागर से मेरा उद्धार करके मुझे अपने चरणकमल की धूलि का एक कण बना लीजिए।

६

नयनं गलदश्रुधारया
वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा
तव नामग्रहणे भविष्यति॥ ६॥

हे प्रभो! आपके पवित्र नाम का कीर्तन करते हुए कब मेरे नेत्र अविरत प्रेमाश्रुओं की धारा से विभूषित होंगे? कब आपके नाम-उच्चारण करने मात्र से मेरा कण्ठ गद्गद् वाणी से रुद्ध हो जाएगा और कब मेरा शरीर रोमांचित हो उठेगा?

७

युगायितं निमेषेण
चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत् सर्वं
गोविन्दविरहेण मे ॥७॥

हे गोविन्द! आपके विरह में मुझे एक क्षण भर का समय बारह वर्षों से भी अधिक प्रतीत हो रहा है। नेत्रों से मूसलाधार वर्षा के समान निरन्तर अश्रु-प्रवाह हो रहा है तथा आपके विरह में मुझे सारा विश्व शून्य लग रहा है।

८

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु माम्
अदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥ ८ ॥

एकमात्र श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई मेरे प्राणनाथ नहीं हैं और वे मेरे लिए यथानुरूप बने ही रहेंगे, चाहे वे मेरा गाढ़ आलिंगन करें अथवा मुझे पैर के नीचे कुचल दें अथवा दर्शन न देकर मेरा हृदय तोड़ दें। वे लम्पट कुछ भी क्यों न करें—वे तो सभी कुछ करनें में पूर्ण स्वतंत्र हैं, क्योंकि बिना किसी शर्त के वे नित्य मेरे आराध्य प्राणेश्वर हैं।

लेखक-परिचय

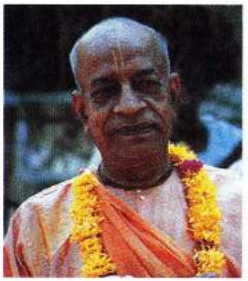

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का आविर्भाव १८९६ ई. में भारत के कलकत्ता नगर में हुआ था। अपने गुरु महाराज श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी से १९२२ में कलकत्ता में उनकी प्रथम भेंट हुई। एक सुप्रसिद्ध धर्म तत्त्ववेत्ता, अनुपम प्रचारक, विद्वान-भक्त, आचार्य एवं चौसठ गौड़ीय मठों के संस्थापक श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती को ये सुशिक्षित नवयुवक प्रिय लगे और उन्होंने वैदिक ज्ञान के प्रचार के लिए अपना जीवन समर्पित करने की इनको प्रेरणा दी। श्रील प्रभुपाद उनके छात्र बने और ग्यारह वर्ष बाद (१९३३ ई.) प्रयाग (इलाहाबाद) में उनके विधिवत् दीक्षा-प्राप्त शिष्य हो गए।

अपनी प्रथम भेंट में ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील प्रभुपाद से निवेदन किया था कि वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वैदिक ज्ञान का प्रसार करें। आगामी वर्षों में श्रील प्रभुपाद ने *भगवद्गीता* पर एक टीका लिखी, गौड़ीय मठ के कार्य में सहयोग दिया तथा १९४४ ई. में बिना किसी की सहायता के एक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका आरम्भ की। उसका सम्पादन, पाण्डुलिपि का टंकण और मुद्रित सामग्री के प्रूफ शोधन का सारा कार्य वे स्वयं करते थे। अब यह उनके शिष्यों द्वारा चलाई जा रही है और तीस से अधिक भाषाओं में छप रही है।

श्रील प्रभुपाद के दार्शनिक ज्ञान एवं भक्ति की महत्ता पहचान कर गौड़ीय वैष्णव समाज ने १९४७ ई. में उन्हें भक्तिवेदान्त की उपाधि से सम्मानित किया। १९५० ई. में श्रील प्रभुपाद ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लेकर वानप्रस्थ ले लिया जिससे वे अपने अध्ययन और लेखन के लिए अधिक समय दे सकें। तदनन्तर श्रील प्रभुपाद ने श्री वृन्दावन धाम की यात्रा की, जहाँ वे अत्यन्त साधारण परिस्थितियों में मध्यकालीन ऐतिहासिक श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में रहे। वहाँ वे अनेक वर्षों तक गम्भीर अध्ययन एवं लेखन में संलग्न रहे। १९५९ ई. में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में ही श्रील प्रभुपाद ने अपने जीवन के सबसे श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण कार्य को प्रारम्भ किया था। यह कार्य था अठारह हजार श्लोक संख्या वाले *श्रीमद्भागवतम्* पुराण का अनेक खण्डों में अंग्रेजी में अनुवाद और व्याख्या। वहीं उन्होंने अन्य लोकों की सुगम यात्रा नामक पुस्तिका भी लिखी थी।

श्रीमद्भागवतम् के प्रारम्भ के तीन खण्ड प्रकाशित करने के बाद श्रील प्रभुपाद

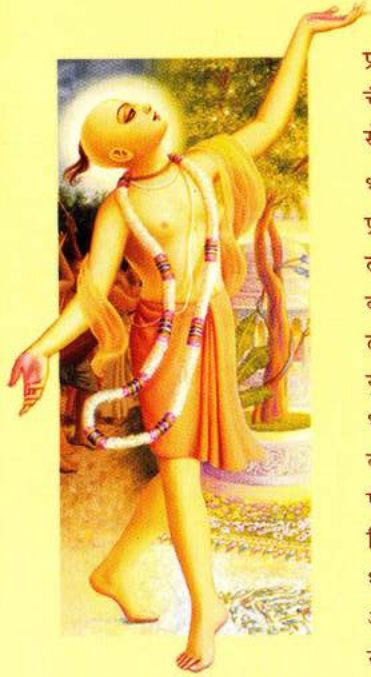

इस भौतिक जगत में युगों युगों से अनेक अवतार प्रकट हुए हैं, किन्तु इनमें से किसी ने गौर अवतार श्री चैतन्य महाप्रभु के समान भगवत्प्रेम का इतनी उदारता से वितरण नहीं किया है।

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु बंगाल में ई. १४८६ में प्रकट हुए। यद्यपि उन्होंने केवल ४८ वर्षों तक लीलाएँ प्रदर्शित कीं, फिर भी उन्होंने मनुष्य समाज की आध्यात्मिक चेतना में क्रान्ति ला दी, जिससे लाखों लोगों का जीवन प्रभावित हुआ। वे उनकी युवावस्था में भी जानेमाने विद्वान थे। उन्होंने सारे भारतवर्ष में भूली हुई प्राचीन आध्यात्मिक चेतना की शिक्षा देने के लिए २४ वर्ष की आयु में अपने परिवार का त्याग किया और संन्यास आश्रम ग्रहण किया। यद्यपि वे स्वयं पूर्ण रूप से विरक्त संन्यासी थे, फिर भी उन्होंने सीखाया कि किस तरह मनुष्य अपने घर, व्यवसाय तथा सामाजिक व्यवहारों से सम्बन्धित रहते हुए भी आध्यात्मिक चेतना का विकास कर सकता है। इस प्रकार उनकी शिक्षा यद्यपि समय से परे है, फिर भी यह आज के विश्व के लिए विशेषतया अनुरूप है। उन्होंने ऐसी व्यावहारिक प्रक्रिया सीखाई, जिसका कोई भी मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से पालन कर सकता है और शुद्ध भगवत्प्रेम की ऊर्मि की अनुभूति कर सकता है। यह पुस्तिका इस महान् अवतार की असामान्य लीलाओं का वर्णन करती है और उनकी शिक्षाओं का सार प्रस्तुत करती है।

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

ISBN 978-93-83095-44-5
90000 >
9 789383 095445